ज्योतिशिखा

अभूतपूर्व आयोजन

आचार्यश्री रजनीश की आशीर्वाद-प्राप्त संस्था जीवन जागृति केंद्र की स्थापना के दस वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में

जीवन जागृति केन्द्र

का

'दशाब्दि महोत्सव'

आचार्यश्री की चिंतनधारा को मूर्तरूप प्रदानार्थ

बम्बई नगर में

'साधना एवं ध्यान केन्द्र'

के निर्माण की सहायता के लिए

कार्यक्रम :
- *आचार्यश्री का प्रेरक प्रवचन*
- *वैविध्यपूर्ण सांस्कृतिक एवं संगीत संयोजन*

तिथि : *सोमवार, ७ सितंबर १९७०*

स्थान : *षण्मुखानंद हाल, किंग्ज सर्किल (शिव), बम्बई*

सभी आध्यात्म-प्रेमियों, उद्योगपतियों, विज्ञापनदाताओं आदि से इस अनुष्ठान में अधिक से अधिक सक्रिय सहयोग एवं आर्थिक योगदान की प्रार्थना है।

विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क कीजिए :

जीवन जागृति केन्द्र

एम्पायर बिल्डिंग, पहला माला, कमरा नं. ५३, डा. डी. एन. रोड, फोर्ट

बम्बई–१ फोन : २६४५३०

ज्योति शिखा

आचार्यश्री रजनीश की अमृतवाणी का

त्रैमासिक संकलन

जून १९७०

अ नु क्र म

	पृ.
● आमंत्रण	४
● आचार्य रजनीश और ध्यान-सम्प्रदाय	६
● समाजवाद से सावधान	१७
● भविष्य का तनाव	३९
● अहंकार	६०
● मृत्यु पर विजय	८०
● आगामी देशव्यापी कार्यक्रम	१०७

●

मुखपृष्ठ सज्जा:

रंगरेखा स्टुडियो, शोलापुर

●

प्रकाशन स्थल :

जीवन जागृति केन्द्र

एम्पायर बिल्डिग (वी. टी. स्टेशन के सामने) पहला मंजला, रूम नं. ५३, डॉ. दादाभाई नौरोजी रोड, बम्बई–१

फोन : २६४५३०

●

मान्यक सम्पादक :

महीपाल

प्रो. अरविन्द

●

अंक : १७वां

●

एक प्रति : रु. १–२५, वार्षिक : रु. ५–००

आमंत्रण

क्रान्ति के उद्‌घोष से दीप्त जब दो बड़ी-बड़ी
आँखें उठती हैं तो लगता है
जैसे सृष्टि एक क्षण को सुलगते - सुलगते थम
गई हो,
और शान्ति का सन्देश लिये सहज विनम्रता से
वे ही पलक जब झुकते हैं
तो लगता है करुणा का अथाह सागर लहरा रहा हो।
वाणी का निनाद कलकल - छलछल छलकता है तो
जड़ में भी संवेदनशीलता उभरने लगती है,
और पाणि का संजीवन स्पर्श जब होता है तो
जनमानस प्रेम और अविरल प्रेम में डूब कर
विभोर हो जाता है!
चेतना की निरन्तर ऊर्ध्वमुखी लौ में जिसका सब
कुछ परिवर्तन हो गया है, और तब मिट्टी में ही
जिसने प्रभु के दर्शन कर लिये हैं—
ऐसा है तेजमान आचार्य श्री रजनीश का तरुण

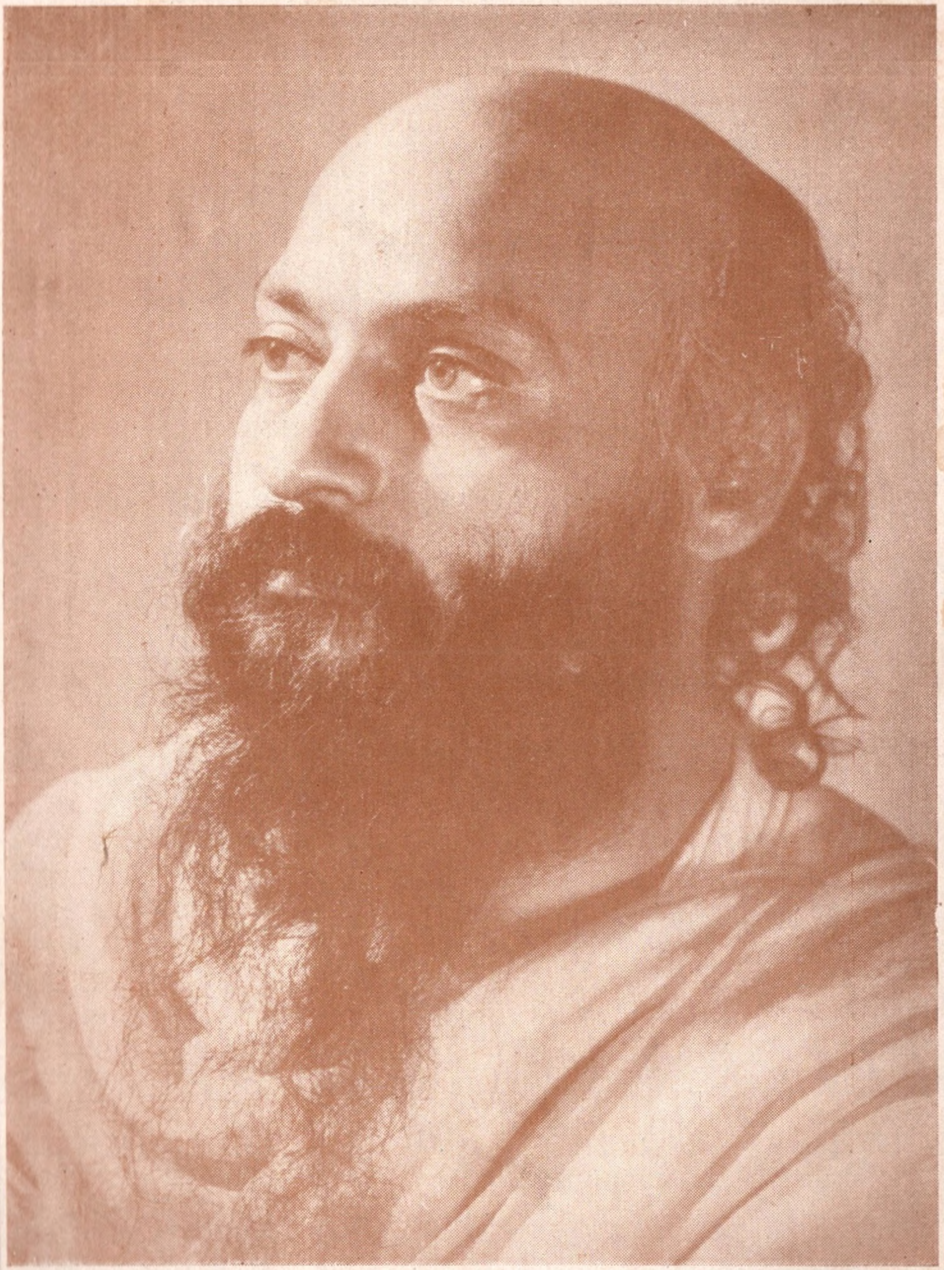

जब दो बड़ी-बड़ी आंखें उठती हैं

आध्यात्म-प्रेमियों के लिए

अपूर्व अवसर

आचार्य श्री रजनीश के सान्निध्य एवं मार्गदर्शन में

आजोल 'साधना-शिविर'

का आयोजन

२८ अगस्त से ३१ अगस्त १९७० तक

इस साधना-शिविर में मौन-साधकों के लिए विशेष सुविधा की व्यवस्था के साथ उनके अनुकूल भोजन का भी प्रबंध किया गया है।

स्थान : संस्कार तीर्थ, आजोल, जि. महेसाणा (गुजरात)

विशेष जानकारी के लिए लिखें :

जीवन जागृति केन्द्र, एम्पायर बिल्डिंग, पहला माला, कमरा नं. ५३

डा. डी. एन. रोड, फोर्ट, बम्बई - १ फोन : २६४५३०

आचार्यश्री रजनीश की सृजनात्मक जीवन दृष्टि

का

पाक्षिक पत्र

यु क्रां द

मानसेवी सम्पादक :

अरविन्द कुमार

एक प्रति : ६० पैसे ❀ वार्षिक शुल्क : १२ रुपये

देश के कोने कोने में विक्रय एजेन्ट नियुक्त करने हैं

सम्पर्क करने तथा शुल्क भेजने का पता :

अरविन्दकुमार, सदस्य युक्रांद प्रकाशन समिति,

कमला नेहरू नगर, जबलपुर (म. प्र.) फोन : २९५७

और ज्योतित व्यक्तित्व !
क्रान्ति और शान्ति की गीतों भरी सुरीली एकात्मता,
प्रत्यक्ष और परोक्ष का अनूठा समन्वय,
व्यवहार और आध्यात्म की अभूतपूर्व गहराइयों
से युक्त चैतन्य
वाचाल और मौन, ध्यान और प्रार्थनारत,
साधना और योग में निबद्ध !
संभावनाओं से पूर्ण की ओर बढ़े जिनके चरण
पदार्थ जगत से परमात्मा के जगत की ओर उठा
अनुभूतियों भरा अंतराल !
बाहर कर्म भीतर विश्रांति,
बाहर गति भीतर स्थिति,
कुल मिला कर और करुणा की अन्तःसलिला सरस्वती
जिसमें पावन होने को,
आचमन करने को
अथवा डूब कर पार हो जाने को---
सर्व साधारण को अनुग्रह भरा आमंत्रण है !

-महीपाल

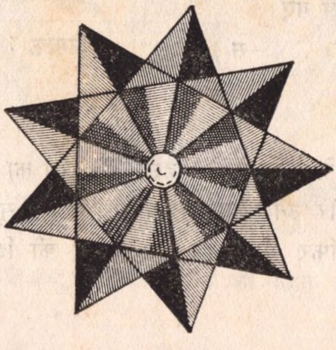

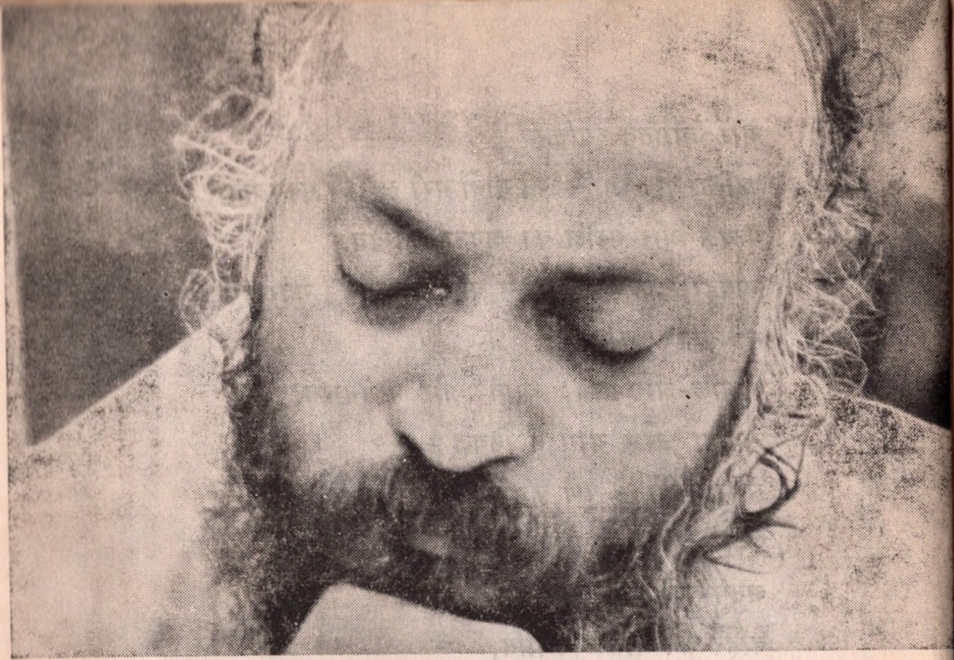

आचार्य रजनीश और ध्यान-सम्प्रदाय

(आचार्यश्री रजनीश की चिन्तनधारा, दर्शन एवं वैचारिक अनुभूतियों का यथातथ्य तुलनात्मक तथा समन्वयात्मक विश्लेषण 'ज्योति शिखा' के लिए विशेष रूप से तत्त्ववेत्ता लेखक द्वारा लिखे गए इस लेख में किया गया है। —स.)

लेखक : डॉ. रामचन्द्र प्रसाद

आचार्य रजनीश के प्रवचनों में रहस्य और अर्थ का रचनात्मक सम्मिश्रण मिलता है और उनके व्यक्तित्व में तरलता एवं सुदृढ़ता का मणि-कांचन संयोग। वे निर्भीक हैं, फिर भी उनमें उस व्यक्ति की झिझक है जो जाड़े में

किसी जल-प्रवाह को पैदल चलकर पार करता हो ! वे जागरूक हैं, फिर भी उस व्यक्ति के समान हैं जो चारों ओर अपने पड़ोसियों से भयभीत हो !

वे उस बर्फ की तरह तरल हैं जो पिघल रही हो !
वे ठोस हैं मानों कोई अनगढ़ा काठ हों !
वे प्रशस्त हैं मानों कोई उपत्यका हों !
वे मलिन हैं मानों पंकिल जल हों ![1]

यदि उनके प्रवचन अगाध प्रतीत होते हैं तो इसका कारण यह है कि वे निस्सीम हैं; यदि वे दुर्ग्राह्य हैं तो इसका कारण यह है कि वे जीवन्त हैं। आचार्यजी ग्रन्थों और विश्वासों के उस पार जाते हैं जहाँ स्वयं जीवन है। वे चाहते हैं कि हम जीवन से, स्वयं से संयुक्त हो जाएँ और हम में इस ज्ञान का उन्मेष हो कि

---

१. दे० लाओत्से, **ताहो-तेह–किंग**, अध्याय १५।

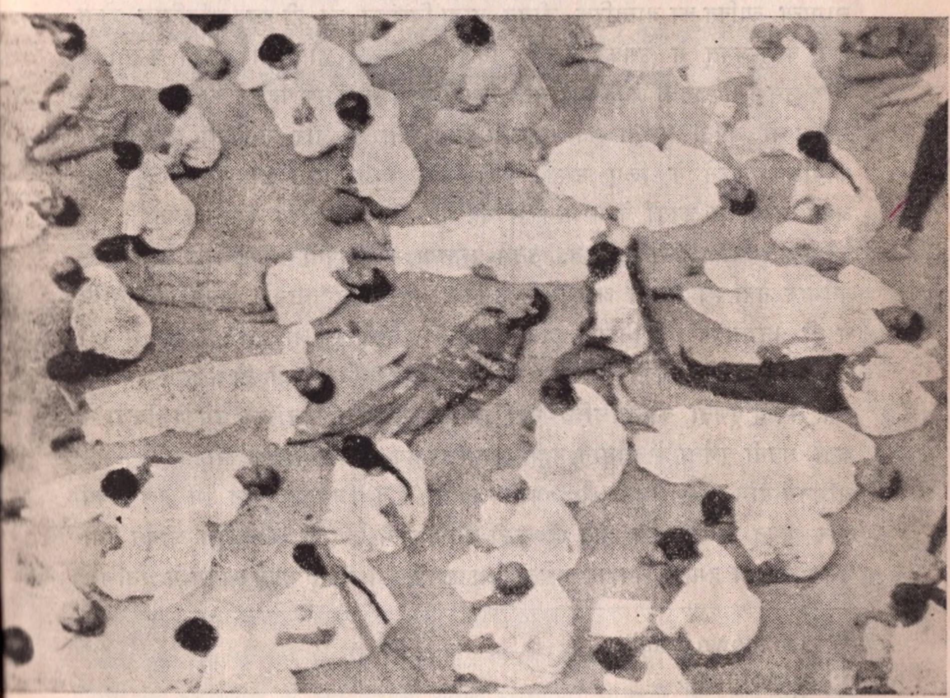

जन-समुदाय और ध्यान की गहन अनुभूति

हम वस्तुतः क्या हैं। मोहनिद्रा में डूबा हुआ व्यक्ति अपने को संसार में पाता है सही, परन्तु संसार उसे स्वयं से पृथक् और नितान्त भिन्न दीख पड़ता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसका यह अहं किसी अज्ञात[२] समष्टि का एक खंड-मात्र है, एक ऐसा खंड जो उन सारे अन्यान्य खंडों से कभी तो संत्रस्त होता है, कभी सुखी जिनसे उसका सम्पर्क स्थापित होता है। इस प्रकार वह जिस स्थिति से वस्तुओं का संचालन करता है वह (स्थिति) उन वस्तुओं से सर्वथा पृथक् और बाहर होती है तथा उसका जीवन अपने ही भिन्न-भिन्न खंडों का हस्तविधान अथवा परिचालन-मात्र रह जाता है। जीवन से विच्छिन्न होने के कारण समंजन[३] के लिए वह जो प्रयास भी करता है वह पूर्णता के बोध से नियमित न होने के कारण विफल हो जाता है। इस प्रकार उसका सारा जीवन उन खंडों से ही संघर्ष करने में बीत जाता है जो उसके अनुमान के बाहर थे।

बौद्ध धर्मगुरुओं की तरह आचार्य रजनीश की भी यह मान्यता रही है कि सामान्य व्यक्ति का आन्तरिक जीवन बाह्य विखंडन का ही हूबहू प्रतिबिम्ब होता है। वस्तु-जगत् से उसका विच्छेद निज से विच्छिन्न होने का द्योतन करता है और उसे ऐसा लगता है कि वह चाहे जिस बिंदु से स्वयं तक पहुँचने की कोशिश करे, उसे न तो अपनी पूर्णता का एहसास हो सकता है और न किसी योजना को कार्यान्वित करने के लिए उसकी सारी शक्तियाँ केन्द्रीभूत हो सकती हैं। जब अपने शब्दों या कार्यों के माध्यम से वह आत्माभिव्यक्ति का प्रयास करता है तब उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह उनमें पूर्णतया --- अपनी समस्त सत्ता के साथ--- वर्तमान नहीं हो सकता और चूंकि उसकी प्रतिक्रियाएँ[४] उसके किसी खंड-विशेष से ही अनुमोदित एवं निस्सृत होती हैं, इसलिए उन्हें पूर्ण आप्तता[५] भी मिली नहीं होती। कोई भी व्यक्ति तब तक एकनिष्ठ और हार्दिक नहीं हो सकता जब तक उसे अपनी पूर्णता की उपलब्धि नहीं हो गई रहती। जब तक उसकी क्रिया में कर्ता अपनी पूर्णता में वर्तमान नहीं रहता तब तक क्रिया दिखावे की क्रिया --- अभिनय-मात्र --- रहती है, असत्य होती है। जिस अनुपात में हम स्वयं और जगत् से विच्छिन्न होते हैं उसी अनुपात में हमारा आन्तरिक जीवन तथा जगत् के साथ हमारे व्यवहार असत्य हुआ करते हैं। अपने सच्चे स्वरूप से अनभिज्ञ

---

२. Unknown totality.
३. Adjustment.
४. Responses.
५. Authenticity.

होना ही इन दोनों विच्छेदों का मूल कारण है। जीवन से उन्मूलित एवं अपने ही स्वरूप से अनभिज्ञ होने के कारण हम दुखी हैं। आचार्यजी का लक्ष्य मानवता को इस दुख से मुक्त करना है। ध्यान-सम्प्रदाय के आचार्यों की तरह वे भी कहते हैं :

सामने शून्य जगत् में जो परिवर्तन हो रहे हैं
वे अज्ञान के कारण ही यथार्थ दीख पड़ते हैं ;
सत्य के पीछे दौड़ने की कोशिश मत करो,
केवल मन की सारी आस्थाओं और विचारों को छोड़ दो।

'लंकावतारसूत्र' में कहा गया है कि परमार्थ (परम सत्य) आर्यज्ञान के माध्यम से उपलब्ध आन्तरिक अनुभूति की अवस्था है और चूँकि यह शब्दों और विचारणाओं की परिधि के बाहर है, इसलिए इनके द्वारा इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। आचार्यजी भी कहते हैं कि जहाँ परम सत्य आत्म-अनात्म के विरोध से परे होता है, वहीं दूसरी ओर शब्द द्वैत-मूलक चिन्तन से उत्पन्न होते हैं। परम सत्य वह आत्मा ही है जो सभी बाह्य एवं आभ्यन्तर रूपों से मुक्त होती है। इस कारण शब्द आत्मा का वर्णन नहीं कर सकते, विवेक-बुद्धि इसे प्रकाशित नहीं कर सकती। 'द्वैत के साथ रुकना' अशोभन है :

ज्योंही सत्-असत् का द्वैत खड़ा होता है,
भ्रान्ति पैदा होती है, मन खो जाता है।

आचार्यजी का लक्ष्य वही है जो ध्यान-सम्प्रदाय के धर्मनायकों का लक्ष्य माना जाता रहा है :

धर्मग्रन्थों से परे एक विशेष संप्रेषण;
शब्दों और वर्णों पर निर्भर न होना;
मनुष्य की आत्मा की ओर सीधा संकेत;
अपने स्वभाव का साक्षात्कार और बुद्धत्व की प्राप्ति।

हम अपने मन को पहचानें, देखें। इसकी गति-विधि का निरीक्षण करें :

जिसे तुम चाहते हो, उसे उसके विरुद्ध खड़ा कर देना
जिसे तुम नहीं चाहते— मन का सबसे बड़ा रोग है।
जब पथ के गूढ़ अर्थ का पता नहीं होता,
तब मन की शान्ति भंग होती है, जीवन व्यर्थ होता है।

निरीक्षक पक्ष-ग्रहण न करे, बल्कि अपनी वासनाओं, विचारों को ऐसे ही देखे 'जैसे कोई सागर पर खड़ा हो, सागर की लहरों को देखता हो। कृष्णमूर्ति ने

इसे निर्विकल्प सजगता कहा है। यह बिल्कुल तटस्थ निरीक्षण है।'[६] ज़ेन निकाय (ध्यान – सम्प्रदाय) के धर्माचार्यों के अनुसार :

धर्म-पथ में कठिनाइयाँ नहीं होतीं;
केवल यह किसी का पक्ष-ग्रहण नहीं करता,
वरन् घृणा और प्रेम से परे होकर
यह पूर्ण और निरावरण प्रकट होता है।
पथ अनन्त शून्य की तरह पूर्ण है,
न कुछ अधिक है और न कुछ कम;
जब हम चुनाव करते हैं,
तभी इसकी तथता अदृश्य हो जाती है।
बाहरी बंधनों का पीछा मत करो
और न अन्तस् के शून्य में ही रमो;
जब मन वस्तुओं के अद्वैत में शान्तिपूर्वक निवास करे
तब द्वैत का आप ही विलोप हो जाता है।

सत्य की सहज अनुभूति पर बल देते हुए आचार्यजी कहते हैं कि हम इसके सम्बन्ध में लच्छेदार प्रवचनों के श्रवण-मात्र से ही संतुष्ट न होकर जीवन की गंगा में उतरें और उसके सहज अमृत का पान करें। सत्य की प्यास तब तक नहीं मिटती जब तक हम यथार्थ के संजीवन जल का पान नहीं करते। आत्मज्ञान और मोक्ष की उपलब्धि केवल सुनने और सोचने से नहीं होती। कल्पना कीजिए कि किसी मरुभूमि में— जहाँ की धरती तप रही हो और जहाँ न वृक्षों की शीतल छाँह हो और न जलाशय, कोई यात्री पश्चिम से पूर्व की ओर जा रहा है। रास्ते में उसकी भेंट एक ऐसे यात्री से होती है जो पूर्व से आ रहा है और वह उससे पूछ बैठता है : 'महाशय, मुझे बहुत प्यास लगी है, क्या आप बता सकते हैं कि मुझे वह जलाशय कहाँ मिलेगा जहाँ मैं अपनी प्यास बुझा सकूँगा ?' पूर्व से आनेवाला यात्री कहता है : 'मित्र, कुछ दूर जाने पर तुम्हें दो पगडंडियाँ मिलेंगी। एक दाहिनी ओर और दूसरी बाईं ओर जाती है। तुम उस पर चलो जो दाहिनी ओर जाती है। कुछ दूर चलने पर तुम्हें एक जलाशय मिलेगा और वहीं प्राणों को परितृप्त करनेवाला अमृत-तुल्य शीतल जल और छाँह भी।' क्या जलाशय और छाँह के वर्णन से वह प्यासा यात्री परितृप्त हो गया होगा ? उसे शान्ति तो तभी मिली

---

६. साधना – पथ, ५०, ५४।

होगी जब जलाशय के पास पहुँचकर उसने उसके जल में स्नान किया होगा और उसका जल पीकर अपनी प्यास बुझायी होगी । धर्म की बातें सुनने, उन पर विचार करने और बुद्धि की सहायता से उन्हें समझ लेने से ही कोई ज्ञानी नहीं हो जाता । यदि तथागत एक और कल्प तक जीवित रहकर हमें इस बात के लिए आश्वस्त कर लेते कि अमृत का स्वाद, उसकी सुरभि, उसकी संजीवनी शीतलता अपूर्व होती है, तो क्या हम उनके वर्णनों से अमृत का स्वाद चख लेते ? हमें इस बात का ज्ञान हो जाता कि अमृत कैसा होता है ? उनके वर्णनों से क्या सचमुच अमृत का पान कर लेते ?

कदापि नहीं ।

केवल श्रवण और चिन्तन से हमें प्रज्ञापारमिता के सच्चे स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता ।

जिस प्रकार आचार्यजी के प्रवचन, उनके शब्द उनकी निजी अनुभूतियों से निस्सृत होते हैं, उसी प्रकार हमारा धर्म, हमारा सत्य हमारे जीवन में न्यस्त और हमारी निजी अनुभूतियों पर आधारित रहे । यदि घर लौटने की अभीप्सा हो तो हम अपनी राह स्वयं ही खोज निकालें । सत्य की खोज कर रहे हों तो जीवन में पुनः प्रवेश करें जिससे वस्तु-जगत् स्वयं से पृथक् और बाहर न दीख पड़े । जीवन के साथ संयोग होने पर ही जगत् अपना हो जाता है; हम उसके प्राणों में उसी प्रकार स्पंदित होने लगते हैं जिस प्रकार वह हमारे प्राणों में स्पंदित होने लगता है । जीवन उन अनेकानेक खंडों का संग्रह-मात्र नहीं रह जाता जिनका सम्बन्ध केवल बाह्य एवं दैवकृत होता है । इसकी सजीव पूर्णता में खंडों का अपना अस्तित्व तो रहता ही है, पर साथ ही वे समग्र के साथ भी पूर्णतया संयुक्त हो जाते हैं । सभी पदार्थों की एकता उसके आन्तरिक जीवन की अखंडता में प्रतिबिम्बित होने लगती है और उसके बायें हाथ को दाहिने हाथ की गति-विधि का पूरा-पूरा पता रहने लगता है । उसकी शक्तियाँ अपनी ही सत्ता की भिन्न-भिन्न टुकड़ियों के परस्पर संघर्ष के कारण छिन्न-भिन्न नहीं होतीं, जिसके परिणामस्वरूप जीवन के प्रत्येक पल के प्रति वह सजग रहता है, उसका उपयोग करता है । उसके क्रिया-कलाप उसके व्यक्तित्व की समग्रता से उत्पन्न होने के कारण समग्रता से मंडित होते हैं, उसका जीवन खंडों से परिचालित नहीं होता और न खंडों का परिचालन-मात्र होता है ।

जीवन और स्वयं के साथ ऐसे निरुपाधिक संयोग को जीवन की स्वीकृति अथवा उसके साथ पुनर्मैत्री-मात्र नहीं कह सकते । विवश होकर अपने भाग्य से संतुष्ट हो रहने में अथवा संसार जैसा भी हो उसे उसी रूप में स्वीकृत कर लेने

में द्वैत अवश्य है, क्योंकि तब भी हम उससे पृथक होते हैं जिसके साथ हमारा समझौता हुआ रहता है। स्वीकृति और त्याग, दोनों के मूल में पार्थक्य का भाव रहता है। परन्तु किसी के साथ पूर्णरूपेण एक हो जाना स्वीकृति और निरसन से परे होता है। ऐसे एकीकरण का मूलाधार निस्स्वार्थ प्रेम है। प्रेम का यही चमत्कार है कि जहाँ एक ओर तो वह तर्क के नियमों का अतिक्रमण कर व्यक्तित्व से ऊपर उठ जाता है, वहीं दूसरी ओर वह व्यक्तित्व को पोषित और समृद्ध करता है। प्रेम पार्थक्य की भावना पर विजय पाता है, पर इस भावना को मिटने नहीं देता। यदि पार्थक्य ही अन्तिम सत्य होता तो न तो सच्चे सम्पर्क की सम्भावना रह जाती और न सच्चे प्रेम की। इसके विपरीत यदि पार्थक्य न होता तो वे ध्रुव भी नहीं होते जिनके बीच प्रेम फलित होता है। इस प्रकार यदि अ और ब में प्रेम है तो इसमें सन्देह नहीं कि यद्यपि अ अ है और ब ब, फिर भी अ ब है और ब अ। जीवन के साथ ऐसा ही प्रेम-पूर्ण संयोग स्थापित करना आचार्यजी का लक्ष्य है।

ध्यान-सम्प्रदाय के धर्मगुरुओं के समान उन्होंने भी प्रेम के महत्त्व का गुणगान किया है और बताया है कि सच्चे प्रेम में भय नाम की कोई चीज नहीं होती। धर्मभीरु लोग तथा ईश्वर से डरनेवाले पुजारी धार्मिक नहीं होते। जब जीवन अपने प्रत्येक पल में परिपूर्ण होता है तब उसमें कल की चिन्ता का स्थान नहीं रह जाता। चिन्ता तो जीवन से विच्छिन्न होने का प्रमाण है; इसका आधार यह भय है कि हमारी आशाएँ फलीभूत नहीं होंगी अथवा हमने क्षण भर के लिए जिसे पकड़ रखा है वह हमसे खो जायगा। आचार्यजी यह नहीं मानते कि प्रेम के जीवन में समस्याएँ उत्पन्न नहीं होतीं; वस्तुतः चुनौतियाँ और संघर्षों के ताने-बाने से ही जीवन का सच्चा निर्माण होता है। जहाँ जीवन के साथ संयोग होता है, वहाँ समस्याएँ अहंकार द्वारा प्रक्षिप्त न होकर यथार्थ होती हैं और वहीं उनके उत्तर कृत्रिम एवं ढुलमुल न होकर रचनात्मक तथा हार्दिक होते हैं। जीवन के साथ समंजित और अभिन्न रहनेवाला व्यक्ति भी एक-न-एक दिन मरता ही है, पर उसकी मृत्यु विशिष्ट प्रकार की होती है। चूँकि मृत्यु उसे बाहर से धराशायी नहीं करती, इसलिए वह उससे भयभीत नहीं होता। वह अपनी मृत्यु के साथ भी उसी प्रकार एकरूप एवं अभिन्न रहता है जिस प्रकार अपने जीवन के साथ। वस्तुतः एक विचित्र प्रकार से वह जीवन-मरण से परे होता है। उसके लिए नित्यता (eternity) कोई मरणोत्तर दशा नहीं होती; वर्तमान क्षण की अनन्तता को काम में लाना ही उसकी दृष्टि में नित्यता का जीवन है।

आचार्यजी द्वारा प्रदत्त निम्नलिखित दस सूत्र चिरस्मरणीय हैं :

१. किसी की आज्ञा कभी मत मानो जब तक कि वह स्वयं की ही आज्ञा न हो;
२. जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है;
३. सत्य स्वयं में है, इसलिए उसे और कहीं मत खोजना;
४. प्रेम प्रार्थना है;
५. शून्य होना सत्य का द्वार है; शून्यता ही साधन है, साध्य है, सिद्धि है;
६. जीवन है, अभी और यहीं;
७. जियो, जागे हुए;
८. तैरो मत -- बहो,
९. मरो प्रतिपल ताकि प्रतिपल नये हो सको;
१०. खोजो मत; जो है -- है; रुको और देखो।

वे तैरने की सलाह न देकर बहने का परामर्श देते हैं। उनकी दृष्टि में हमारी महत्त्वाकांक्षाएँ जीवन को आमूल विषाक्त कर डालती हैं। वे जानते हैं कि–

यदि योग्यता की पदमर्यादा न बढ़े तो न विग्रह हो और न संघर्ष।
यदि दुर्लभ पदार्थ वरीय न बनें तो लोग दस्युवृत्ति से भी मुक्त रहें।
यदि उसकी ओर जो स्पृहणीय है उनका ध्यान आकृष्ट न किया जाय तो उनके हृदय अनुद्विग्न रहें।

इसलिए सन्त और ज्ञानी अपनी शासन-व्यवस्था में उनके उदरों को भरते किन्तु उनके हृदयों को शून्य करते हैं; वे उनकी हड्डियों को दृढ़तर बनाते पर उनकी इच्छाशक्ति को निर्बल करते हैं।[७]

रुकना और देखना अनिवार्य है :

पकड़ने और भरने से रुक जाना ही अधिक श्रेयस्कर है।
यद्यपि तलवार को तीक्ष्ण करने में आप इसकी धार को महसूसकर सकते हैं, परन्तु दीर्घावधि तक इसकी तीक्ष्णता का आश्वासन नहीं दे सकते।
सोने और हीरे से भरे हुए भवन की कोई रक्षा नहीं कर सकता।
समृद्धि और सम्मान से औद्धत्य उत्पन्न होगा ही; इसलिए उनके पीछे-पीछे असत् का चलना स्वाभाविक है।
कार्य की सफल निष्पत्ति के उपरान्त (जब कर्ता का यश फैलने लगे) ओझल हो जाना ही स्वर्गिक ताओ है।[८]

---

७. **ताओ–तेह–किंग**, अध्याय ३ (अनुवाद– लेखक)।
८. उपरिवत्, अध्याय ९।

ज़ेन तत्त्वज्ञानियों के अनुसार परमात्मा जीवन का पर्याय है। वह हमसे परे नहीं है, बल्कि हममें ही है, हम वही हैं। आचार्यजी भी कहते हैं कि जो जीवन को जान लेता है, वह सब जान लेता है —— जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है। अपने मनोभावों के समुचित सम्प्रेषण के लिए वे द्वैतमूलक भाषा का प्रयोग करते हैं, उन लोगों की भाषा में अपने मनोभावों को व्यक्त करते हैं जो द्वैत के दास हैं, पर साथ ही वे यह भी चाहते हैं कि ऊर्ध्वगमन की यात्रा में हम इस भाषा तक ही न रुककर इससे आगे बढ़ें। आचार्यजी भी जेन धर्माचार्यों की तरह कहते हैं कि सच्चे धर्म की जड़ें व्यक्तिगत अनुभूति में होती हैं और सभी कार्य तभी तक उपयोगी होते हैं जब तक वे, तत्त्वतः, सर्जनात्मक हैं। परन्तु वे कार्य जो किसी सम्प्रदाय या धर्म-निकाय के सिद्धान्तों का अंधानुगमन–मात्र करते हैं अथवा उनके ही सिद्धान्तों से अनुशासित होते हैं, सर्जनात्मक नहीं हो सकते। यही कारण है कि विश्व के सभी तत्त्वदर्शी सर्जक और क्रान्तिकारी रहे हैं। यदि बुद्ध भी अपने समसामयिकों की चित्तवृत्ति से प्रभावित होकर उनका-सा ही आचरण करते तो इतिहास की दृष्टि में उनके अस्तित्व का क्या मूल्य होता ?

ध्यान-सम्प्रदाय के आचार्यों के इस मत को आचार्य रजनीश भी स्वीकार करते हैं कि न कहीं कोई 'सृजनहार', 'जगत्कर्ता', 'जगदीश्वर' या 'विधाता' है और न कहीं कोई भगवान-जैसी चीज। स्वयं के अतिरिक्त ऐसा कोई भी व्यक्ति या वस्तु नहीं जिस पर हम निर्भर हो सकें। हमें यह स्वीकार करना होगा कि जहाँ बुद्धदेव, लाओत्से, ईसा मसीह प्रभृति चेतनाओं की अनुभूतियों में मौलिक समानता मिलती है, वहीं दूसरी ओर उनके अनुयायियों द्वारा रचे गए धर्मों के स्वाँग में विषमता ही अधिक है, समानता कम। चूंकि सत्य का सम्बन्ध व्यक्तिगत अनुभूति से है, इसलिए सम्प्रदायों से, उनकी अराजकता से, इसे मुक्त करना ही होगा। आचार्यजी जिसे परम सत्य कहते हैं उसे उस बौद्धिक तल पर ग्रहण नहीं किया जा सकता जिस पर हम जीवन की भिन्न-भिन्न समस्याओं को ग्रहण करते या समझने की चेष्टा करते हैं।

जब अद्वैत का पूरा ज्ञान नहीं होता,
तभी दो तरह की हानियाँ होती हैं——
सत्ता की अस्वीकृति इसके नितान्त निषेध की ओर प्रवृत्त कर सकती है
जब कि शून्यता की स्वीकृति स्वयं अपने ही निषेध का कारण बन जाती है।
शब्दबाहुल्य और ऊहापोह ——

इनके साथ रहना ही लक्ष्य से दूर भटक जाने का प्रमाण है;
इसलिए छोड़ें हम शब्दों को, त्यागें अपनी बुद्धिक्रियाओं को. . . . ।
मूल की ओर लौटने पर ही अर्थ का लाभ होता है।
जब हम बाहरी वस्तुओं का अनुगमन करते हैं, विवेक का लोप हो जाता है।
ज्योंही हम भीतर से प्रबुद्ध होते हैं,
दृश्य जगत् की शून्यता के उस पार चले जाते हैं।

आचार्यजी के 'उपदेशों' को समझने के लिए दृष्टि की नमनीयता एवं उदारता अनिवार्य है। नमनीयता मुक्तचित्तता का पर्याय है। उनके प्रवचनों में दृष्टि की उन्मुक्तता का वैसा ही आह्लादजनक वातावरण मिलता है जैसा जेन धर्मनायकों की शिक्षाओं में। गौतम बुद्ध की तरह वे भी कहते हैं : 'हम अपना दीप आप बनें, अपनी ही शरण में जाएँ; किसी बाहरी शरणालय की खोज न करें। सत्य के दीपक को पकड़ रखें, सत्य के आसरे को न छोड़ें। स्वयं के अतिरिक्त किसी अन्य शरण की तलाश न करें। वे लोग, जो आज या कल-----मेरी मृत्यु के अनन्तर--अपना दीपक आप बनेंगे, जो किसी बाहरी आसरे पर निर्भर न होंगे वरन् सत्य को अपना दीपक मान उससे ही संलग्न रहेंगे, जो सत्य को अपना आसरा मान उसे पकड़ रखेंगे और अन्य किसी आश्रय की तलाश नहीं करेंगे, जो अपने सिवा किसी अन्य पर निर्भर नहीं होंगे--- वे लोग (ज्ञान के, सत्य के) सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ होंगे।'

सिद्धान्तों ने सत्य की बुरी तरह हत्या कर दी है। लोग अपने भीतर देदीप्यमान आत्मा को नहीं देखते, सिद्धान्तों में परमात्मा की तलाश करते हैं।

कहा जाता है कि शोदाई एरो जो ध्यान की शिक्षा ग्रहण करना चाहता था, बासो के पास आया। ध्यानाचार्य ने पूछा : 'तुम्हारा आना किस लिए हुआ है ?'

'मुझे ज्ञान चाहिए, मैं बुद्ध-ज्ञान की प्राप्ति के लिए लालायित हूँ।'

'बुद्ध-ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है, ऐसे ज्ञान का सम्बन्ध शैतान से है।'

जब एरो ने आचार्य की बात नहीं समझी तब आचार्य ने उसे सेकितो नामक एक अन्य ध्यानाचार्य के पास भेज दिया। एरो ने आते ही सेकितो से पूछा :

'बुद्ध कौन है ?'

'तुममें बुद्धत्व के लक्षण नहीं हैं ?'

'पशुओं के बारे में आपकी क्या राय है ?'

'उनमें है।'

'तब मुझमें क्यों नहीं ?' एरो ने स्वाभाविक जिज्ञासा से यह प्रश्न किया।

'क्योंकि तुम पूछते हो।' सेकितो ने जवाब दिया।

आचार्य के इस कथन से एरो की उलझन मिट गई और उसे ज्ञान हो गया।

आचार्यजी भी चाहते हैं कि व्यक्ति मान्यताओं और विश्वासों में न पड़े, क्योंकि वह दिशा अनुभव और ज्ञान की दिशा नहीं है। विचार कभी भी ज्ञात के पार नहीं ले जाते।

वे जीवन की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं।

जीवन है अभी और यहीं।

उसमें उतरा जा सकता है।

मृत्यु या तो भविष्य में है या अतीत में, वर्तमान में कदापि नहीं। लेकिन जीवन तो सदा वर्तमान में है, वह वर्तमान ही है। इसलिए उसे जाना जा सकता है, उसे जिया जा सकता है—— उसके सम्बन्ध में विचार करने की आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः उसके सम्बन्ध में विचार करनेवाले लोग उसे चूक जाते हैं—— कारण, विचार की गति अतीत और भविष्य में ही होती है। विचार वर्तमान में नहीं होता; वह भी मृत है, मृत्यु का सहधर्मी है। उसमें जीवन के तत्त्व नहीं हैं।

इसलिए जीवन का विचार नहीं होता, होती है अनुभूति।

अनुभूति है निर्विचार, निःशब्द, मौन, शून्य। इसलिए निर्विचार चैतन्य को वे 'जीवनानुभूति का द्वार' कहते हैं। जीवन को जान लेनेवाले लोग मृत्यु को भी जान लेते हैं, क्योंकि 'मृत्यु जीवन को न जानने से पैदा हुआ भ्रम-मात्र है'। जो जीवन को नहीं जानता, वह स्वभावतः शरीर को ही 'स्वयं' मान लेता है। चूंकि शरीर मरता-मिटता है और इसकी इकाई विसर्जित होती है, इसलिए इससे ही इसके पूर्ण अंत होने की धारणा पैदा होती है। इसके भय से पीड़ित व्यक्ति 'आत्मा अमर है', 'आत्मा अमर है' का जाप करने लगते हैं। लेकिन ये दोनों धारणाएं एक ही भ्रम से उत्पन्न होती हैं। वे एक ही भ्रान्ति के दो रूप और दो प्रकार के व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ हैं। लेकिन स्मरण रहे कि दोनों की भ्रान्ति एक है और दोनों प्रकार से वही भ्रान्ति मजबूत होती है।

अंगरेजी विभाग, पटना युनिवर्सिटी, पटना।

★

जीवन उन्हीं को मिलता है जो भयभीत नहीं हैं, जीवन उनको मिलता है जो असुरक्षा में कूदने को तत्पर हैं

पूंजीवाद सम्पत्ति पैदा करता है
समाजवाद सम्पत्ति बांटता है
अगर पूंजीवाद
सम्पत्ति पैदा न कर पाये
तो समाजवाद
सिर्फ गरीबी बांट सकता है

समाजवाद से सावधान!

संकलन : लहरचंद शाह

एक छोटी-सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं। मैंने सुना है एक महानगरी में बहुत भीड़ थी। रास्तों पर लाखों लोग खड़े थे। बड़ी प्रतीक्षा से किसी के आने की राह देखते थे। फिर सम्राट की सवारी आयी और उस भीड़ के सभी लोग सम्राट के वस्त्रों की चर्चा करने लगे और मजा यह था कि सम्राट बिल्कुल नग्न था, उसके शरीर पर वस्त्र थे ही नहीं। सुना है मैंने यह भी, सिर्फ एक छोटे-से बच्चे ने जो अपने बाप के कंधे पर बैठकर आ गया था उसे बड़ी हैरानी हुई। उसने अपने बाप से कहा कि लोग सम्राट के सुन्दर वस्त्रों की चर्चा कर रहे हैं, लेकिन मुझे तो सम्राट नग्न दिखायी

पड़ रहा है। उसके बाप न उससे कहा, "चुप, नासमझ ! कोई सुन लेगा तो बड़ी मुसीबत हो जाएगी !" और वह उस बच्चे को लेकर भीड़ के बाहर हो गया।

सम्राट नग्न था और लोग उसके वस्त्रों की चर्चा कर रहे थे ! बात क्या थी? कोई ६ महीने पहले एक आदमी ने उस सम्राट से आकर कहा था कि आपने सारी पृथ्वी जीत ली, लेकिन आपके पास देवताओं के वस्त्र नहीं हैं। मैं लाकर दे सकता हूं। सम्राट का मन लोभ से भरा। सब उसके पास था, देवताओं के वस्त्र न थे -- न कभी सुना था, न कभी देखा था। उस आदमी ने कहा, "फिक्र न करें, थोड़ा खर्च तो होगा, लेकिन वस्त्र लाकर मैं आ जाऊंगा।" ६ महीने की उसने मोहलत चाही। ६ महीने तक सम्राट ने एक महल में उसे बन्द कर दिया। चारों तरफ नंगी तलवारों का पहरा लगा दिया। वह आदमी कभी लाख, कभी दो लाख, रुपये मांगने लगा। उसने ६ महीने में कई करोड़ रुपये सम्राट से लिये वस्त्र लाने के लिए, लेकिन सम्राट निश्चित था; क्योंकि महल में वह कैद था और भाग नहीं सकता था। ६ महीने पूरे होने पर वह आदमी एक बहुमूल्य पेटी में वस्त्र लाकर उपस्थित हुआ। सम्राट तथा दरबारी मौजूद थे। उसने पेटी का ताला खोला। सम्राट से कहा, "अपनी पगड़ी मुझे दे दें।" सम्राट की पगड़ी पेटी के भीतर डाली, फिर पेटी के भीतर से कोई पगड़ी निकाली; लेकिन हाथ उसका खाली था। सम्राट ने गौर से देखा। उसने कहा, पगड़ी आपको दिखायी पड़ रही है ? फिर धीरे से कहा कि जब मैं चलने लगा, तो देवताओं ने कहा कि ये वस्त्र उन्हीं को दिखायी पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुए हैं। हाथ खाली था, लेकिन सम्राट को तत्काल पगड़ी दिखायी पड़ने लगी। उसने कहा, "इतनी सुंदर पगड़ी मैंने कभी नहीं देखी।" फिर सम्राट के एक-एक वस्त्र उस पेटी में डाले गये और झूठे वस्त्र सम्राट पहनता चला गया। झूठे वस्त्रों से कोई अर्थ न था। वह नंगा होता चला गया। फिर आखिरी वस्त्र के उतारने की अब बात आयी। तब सम्राट घबराया। लेकिन उस आदमी ने कहा कि अब घबराने से कोई फायदा नहीं। झूठ की यात्रा शुरू हो जाय तो पूरी ही यात्रा करनी पड़ती है। अब वापस नहीं लौट सकते। लोग क्या कहेंगे ? आखिरी वस्त्र भी सम्राट का उतर गया। दरबारी भी बड़े जोर से प्रशंसा करने लगे कि इतने सुन्दर वस्त्र हमने कभी नहीं देखे, क्योंकि उस आदमी ने कहा था कि ये वस्त्र सिर्फ उसी को दिखायी पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ है। सब दरबारियों को वस्त्र दिखायी पड़ने लगे, जो नहीं थे। प्रत्येक दरबारी को ऐसा लगा कि जब सबको दिखायी पड़ रहे हैं तो होंगे जरूर, सिर्फ मुझे नहीं दिखायी पड़ रहे हैं, तो अपना बाप संदिग्ध हुआ, लेकिन अब इस बात को खोलने से

कोई मतलब नहीं। लेकिन यह बात राजमहल के भीतर थी। उस आदमी ने कहा, "महाराज, देवताओं ने कहा है कि ये वस्त्र पहली दफा पृथ्वी पर जा रहे हैं, इनका जुलूस, इनकी शोभायात्रा भी निकलनी जरूरी है। रथ तैयार है, आप बाहर चलें।" सम्राट घबराया, लेकिन उस आदमी ने कहा, "आप बिल्कुल न घबरायें, आपके रथ के सामने ही डुग्गी पीटते हुए लोग चलेंगे कि यह वस्त्र उन्हीं को दिखायी पड़ेंगे जो अपने बाप से पैदा हुए हैं। ये वस्त्र सबको दिखायी पड़ेंगे, आप घबरायें नहीं।" सम्राट रथ पर सवार हुआ नग्न! सभी को नग्न दिखायी पड़ा, लेकिन कौन कहे कि सम्राट नग्न है! एक छोटे-से बच्चे ने यह कहा था तो उसके बाप ने कहा, "नासमझ, अभी तुझे अनुभव नहीं है, जब बड़ा होगा तब वस्त्र तुझे भी दिखायी पड़ने लगेंगे। यहां कोई सुन लेगा तो मुसीबत हो सकती है।"

इस कहानी से यों अपनी बात शुरू करना चाहता हूं : समाजवाद के नाम से आज सारी दुनिया में जो शोर है, उस भीड़ के बीच में मेरी हालत उस बच्चे जैसी है जो कहे कि सम्राट नंगा है और वस्त्र नहीं हैं! लेकिन मुझे लगता है कि किसी को यह बात कहनी चाहिए। मनुष्य का मन ऐसा है कि प्रचारित असत्य भी सत्य मालूम होने लगते हैं, बहुत बार बोले गये झूठ भी सच मालूम होने लगते हैं और पहली बार बोला गया सच भी सच नहीं मालूम पड़ता है। इधर सौ वर्षों से समाजवाद शब्द के आसपास एक मिथ, एक कहानी गढ़ी जा रही है। उसके निरंतर प्रचार ने, जो समाजवादी नहीं हैं, उन्हें भी समाजवादी बना दिया है। जो भीतर से समाजवादी नहीं हैं, भीतर से वे भी उसका गुणगान करते हुए दिखायी पड़ते हैं। समाजवाद के विरोध में बोलने का साहस किसी में नहीं मालूम पड़ता है। सब अनुभवी हैं, मैं एक गैर अनुभवी आदमी हूं इसलिए उसके विपरीत बोलने की कोशिश करूंगा। लेकिन मनुष्य जाति के इतिहास में भीड़ कुछ मान ले इससे सच नहीं हो जाता है। भीड़ ने हमेशा बड़े-बड़े झूठ स्वीकार किये हैं और हमेशा उन्हीं के साथ जीती रही है। एक नया असत्य मनुष्य के मन को पकड़े है समाजवाद के नाम से। उसकी पूरी व्याख्या समझ लेनी जरूरी है। **पहली बात तो यह समझ लेनी जरुरी है कि समाजवाद पूंजीवाद के विरोध में शत्रु की भांति खड़ा हुआ है। लेकिन समाजवाद कुछ भी हो, पूंजीवाद की संतान है। सामंतवाद की व्यवस्था से, फ्युडलिज्म से पूंजीवाद पैदा हुआ। अगर पूंजीवाद ठीक से विकसित हो तो उससे समाजवाद पैदा हो सकता है। अगर समाजवाद ठीक से विकसित हो तो उससे साम्यवाद पैदा हो सकता है। अगर साम्यवाद ठीक से विकसित हो तो उससे अराजकतावाद पैदा हो सकता है। लेकिन ठीक से विकसित हो**

तब। बच्चे मां के पेट से समय से पहले भी पैदा हो सकते हैं और कोई मां आतुर हो सकती है कि ९ महीने क्यों प्रतीक्षा करूं। पांच ही महीने में बच्चा अगर निकल आये पेट से तो ज्यादा अच्छा है। चार महीने का कष्ट भी बचेगा, चार महीने की प्रतीक्षा भी बचेगी और बेटे से अभी मिलना हो जायेगा। लेकिन पांच महीने के बेटे मुर्दा पैदा होते हैं, जिन्दा नहीं। और अगर जिन्दा पैदा हो जायें तो जिन्दगी भर मुर्दे से भी बदतर उनकी हालत होती है।

रूस में भी जो समाजवाद पैदा हुआ वह भी प्रीम्योच्योर है, वह भी जरूरत के पहले पैदा हुआ। रूस पूंजीवादी मुल्क न था, इसलिए रूस में समाजवाद को जबरदस्ती पैदा करने की कोशिश की गयी। समाजवाद तो पैदा हुआ, लेकिन मुर्दा पैदा हुआ। और समाजवाद के पैदा होने में, जिन गरीबों के लिए समाजवाद पैदा हुआ, एक करोड़ की संख्या में उन्हीं गरीबों की हत्या भी करनी पड़ी। शायद मनुष्य जाति के इतिहास में समाजवादी मुल्कों ने जितनी हत्या की है उतनी किसी ने भी नहीं की। और आश्चर्य तो यह है कि जिन गरीबों के लिए, जिन मजदूरों और शोषितों के लिए समाजवाद खड़ा हुआ था (रूस में एक करोड़ पूंजीपति नहीं थे, एक करोड़ तो पूंजीपति आज अमरीका में भी नहीं हैं) रूस में एक करोड़ लोगों की जो हत्या हुई वह किसकी हत्या है? वह उनकी ही हत्या थी जिनके लिए समाजवाद लाना था। हत्या करना आसान हो जाता है अगर आपके ही हित में हत्या करनी हो। जब कोई हत्यारा आपके ही हित में हत्या करता है, तो आप भी निहत्थे हो जाते हैं, बचाव भी नहीं कर सकते। एक करोड़ लोगों की हत्या के बाद भी रूस आज एक गरीब मुल्क है। आज भी रूस अमीर मुल्क नहीं है। अभी भी समाजवाद मरा-मरा है और पिछले दस वर्षों से रूस रोज पूंजीवाद की तरफ कदम उठा रहा है। वह जो भूल हो गयी उसकी तरफ वापस कदम उठाये जा रहे हैं। माओ-त्सेतुंग का रूस से जो विरोध है वह यही है कि रूस रोज पूंजीवादी होता चला जा रहा है। लेकिन रूस का पचास साल का अनुभव यह है कि समाजवाद लाने में थोड़ी जल्दी कर दी। देश पूंजी पैदा ही नहीं कर पाया था। यह ध्यान रहे, पूंजीवाद ठीक से विकसित हो तो समाजवाद सहज परिणाम है। नौ महीने का गर्भ हो तो बच्चा सहज और चुपचाप पैदा हो जाता है। पूंजीवाद ठीक से विकसित न हो तो समाजवाद की बात आत्मघाती है। मैं खुद समाजवादी हूं और जब समाजवाद से सावधान करने की बात करूंगा तो हैरानी होगी। हैरानी यह है कि मैं भी चाहता हूं कि बच्चा पैदा हो, लेकिन नौ महीने पूरे हो जाएं। यह देश अभी समाजवादी भी नहीं है और इस देश में समाजवाद की बातें उतनी ही खतरनाक हैं जितनी रूस में थीं, उतनी ही

कागज़ी समाजवाद

(' आर्गनाइजर ' के सौजन्य से)

खतरनाक हैं जितनी चीन में हैं । चीन में फिर लाखों लोगों की हत्या करने का उपाय करना पड़ रहा है । फिर भी समाजवाद नहीं आयेगा, क्योंकि समय के पहले कुछ भी नहीं लाया जा सकता है । जीवन की व्यवस्था में जल्दी नहीं हो सकती । हमारा देश अभी पूंजीवादी नहीं है । इस बात को थोड़ा समझ लेना जरूरी है कि पूंजीवाद का क्या मतलब है ?

पूंजीवाद हमारे मन में सिर्फ एक गाली की तरह आता है, एक निन्दा की तरह, बिना यह जाने हुए कि पूंजीवाद ने मनुष्य जाति के लिए क्या किया है । बिना यह समझे हुए कि पूंजीवाद ही मनुष्य जाति को समाजवाद तक पहुंचाने की प्रक्रिया है, बिना यह समझे हुए कि अगर मनुष्य कभी समान होगा और अगर कभी सारे मनुष्य खुशहाल होंगे और अगर कभी सारे मनुष्य दीनता और दरिद्रता से मुक्त होंगे, तो उसमें सौ प्रतिशत हाथ पूंजीवाद का होगा । पूंजीवाद के संबंध में दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं । पहली बात तो यह कि पूंजीवाद पूंजी उत्पन्न करने की व्यवस्था का नाम है । 'ए सिस्टम दैट क्रिएट्स वेल्थ' एक ऐसी व्यवस्था जो संपत्ति का सृजन करती है । पूंजीवाद के पहले दुनिया में किसी व्यवस्था ने पूंजी पैदा नहीं की थी । पूंजीवाद ने पूंजी पैदा की है । पैदा करने का मतलब यह है कि ऐसी

पूंजी जमीन पर पैदा की है जो आदमी अगर पैदा न करता तो खदानों से न निकलती, जमीन से न निकलती, आकाश से न निकलती। आज जमीन पर जो पूंजी है वह पैदा की गयी पूंजी है। वह कोई प्राकृतिक संपत्ति नहीं है जो कि किसी खदान से मिलती हो, जमीन से मिलती हो, किसी झरने से मिलती हो, किसी प्रकृति से, किसी जगह से मिलती हो। पूंजीवाद ने पिछले डेढ़ सौ वर्षों में पूंजी पैदा करने की व्यवस्था ईजाद की। इनके पहले जो भी व्यवस्थाएं थीं वे लुटेरों की व्यवस्थाएं थीं। चंगेज हों कि तैमूरलंग हों, कोई भी सम्राट हों--सामंत ने पूंजी को लूटा था, शोषण किया था; लेकिन पूंजीवाद ने पूंजी को पैदा किया है। किंतु हम सामंतवादियों के साथ ही पूंजीवाद को भी सोचने के आदी हो गये हैं। हम सोचते हैं, पूंजीवाद ने भी पूंजी का शोषण किया है। पूंजीवाद ने पूंजी निर्मित की है और पूंजी निर्मित हो जाय तो बंटवारा हो सकता है। पूँजी अगर निर्मित न हो, तो बंटवारा किस चीज का होगा। आज जैसा इंदिरा जी और उनके नासमझ साथी समझते हैं कि समाजवाद आ सकता है, संपत्ति बांटी जा सकती है तो उनकी बातें ऐसी हैं कि संपत्ति के बिना ही संपत्ति को बांटने का वे विचार कर रहे हैं। देश के पास संपत्ति नहीं है। अगर आज हम बांटेंगे तो सिर्फ गरीबी बंटेगी, धन नहीं बंट सकता है। धन है ही नहीं। धन होना चाहिए बांटने के लिए। बंटना चाहिए जरूर एक दिन, लेकिन बंटने के पहले धन होना चाहिए। **पूंजीवाद संपत्ति पैदा करता है, समाजवाद संपत्ति बांटता है। लेकिन पैदा करना पहला कदम है, बांटना दूसरा कदम है और अगर पूंजीवाद संपत्ति पैदा न कर पाये तो समाजवाद सिर्फ गरीबी बांट सकता है।** अगर हमारे देश ने निर्णय लिया समाजवादी होने का तो हम सदा के लिए गरीब होने का निर्णय लेंगे; क्योंकि हम गरीबी बांट के रह जायेंगे और कुछ भी न कर पायेंगे; क्योंकि पूंजी को पैदा करने की व्यवस्था के सूत्र हमारे ख्याल में नहीं हैं।

पहले तो यह बात समझ लेनी जरूरी है कि दुनिया के सारे लोगों ने मिलकर पूंजी पैदा नहीं की है, बिल्कुल थोड़े से लोगों ने पूंजी पैदा की है। कोई एक राकफेलर, कोई एक फोर्ड, कोई बिड़ला, कोई टाटा, कोई साहू पूंजी पैदा करता है। पूंजी सारे लोगों ने पैदा नहीं की है। अगर हम अमरीका से दस बड़े नाम निकाल दें तो अमरीका भी हमारे जैसा ही गरीब देश होगा। मैंने सुना है, हेनरी फोर्ड लंदन आया हुआ था। उसने स्टेशन पर आकर इन्क्वायरी आफिस में पूछा कि कोई सस्ता-सा होटल हो तो बता दो। उस क्लर्क ने कहा– "आपके चेहरे को मैंने अखबारों में देखा है। लगता है कि आप हेनरी फोर्ड हैं। आप सस्ते होटल खोज

रहे हैं ? आपके बेटे और बेटियां आती हैं तो वे सबसे महंगे होटल खोजते हैं।"

हेनरी फोर्ड ने कहा, "मैं गरीब आदमी का बेटा हूं और मेरे बेटे हेनरी फोर्ड के बेटे हैं, अमीर आदमी के बेटे हैं। मैंने संपत्ति पैदा की है, मैं गरीब आदमी का बेटा हूं। मुझे सस्ता होटल बता दें, मैं किसी फोर्ड का बेटा नहीं हूं।"

अमरीका से दस बड़े नाम हम छांट दें तो अमरीका भी गरीब होगा। अमरीका के पास जो आज संपत्ति है वह कुछ लोगों के मस्तिष्क का आविष्कार और कुछ लोगों की संपत्ति को पैदा करने की कला का परिणाम है। सारी दुनिया ने संपत्ति क्यों पैदा नहीं कर ली ? अभी हिन्दुस्तान संपत्ति पैदा क्यों नहीं कर पाया ? हम सबसे पुरानी कौम हैं और जमीन पर सबसे पुरानी हमारी संस्कृति है, लेकिन हम संपत्ति क्यों पैदा नहीं कर पाये ? संपत्ति को पैदा करने की कला हम विकसित न कर पाये, क्योंकि हम संपत्ति विरोधी देश हैं, इसलिए संपत्ति को पैदा करने की दिशा में हमारी प्रतिभा नहीं जा सकी। हमारी प्रतिभा गयी संन्यास की दिशा में। जो आदमी फोर्ड बन सकता था, वह बुद्ध हो गया। हमने अपनी सारी प्रतिभा को चैनेलाइज किया संन्यास की तरफ। तो हमने बड़े संन्यासी पैदा किये, बुद्ध पैदा किया, शंकर पैदा किया, नागार्जुन पैदा किया, महावीर पैदा किया; लेकिन हम संपत्ति पैदा करनेवाले बड़े कुशल लोग पैदा न कर सके। उस तरफ हमारी प्रतिभा न गयी— संपत्ति के विरोध के कारण।

मैंने सुना है, हिन्दुस्तान से एक यात्री वापस लौटा। काउंट केसरलिन ने एक छोटा-सा वाक्य लिखा है। वह वाक्य मैंने पढ़ा तो बहुत हैरान हुआ। उसने लिखा कि 'इंडिया इज ए रिच लैंड व्हेयर पुअर पिपुल लिव।' हिंदुस्तान एक अमीर देश है, जहां गरीब लोग रहते हैं। मैं थोड़ा हैरान हुआ। यह आदमी पागल तो नहीं होगा। अगर हिन्दुस्तान अमीर देश है, तो गरीब लोग वहां कैसे रहेंगे ? और अगर वहां गरीब लोग रहते हैं, तो अमीर देश कैसे है ? लेकिन उसका मजाक मैं समझा। उसका मजाक यह था कि हिन्दुस्तान कभी अमीर हो सकता था, लेकिन अमीरी पैदा करनी पड़ती है। प्रतिभा नियोजित करनी पड़ती है, जीनियस को यात्रा पकड़ानी पड़ती है – तब संपत्ति पैदा होती है, अन्यथा संपत्ति पैदा नहीं होती। संपत्ति के उत्पादक मजदूर नहीं हैं, संपत्ति का उत्पादक श्रमिक नहीं है, अन्यथा आदिवासी श्रम कर रहे हैं जन्मों-जन्मों से और संपत्ति पैदा नहीं कर पाये। अफ्रीका का गरीब भी श्रम कर रहा है, लेकिन संपत्ति पैदा नहीं हो पायी। अगर श्रम संपत्ति पैदा करता, तो सारी दुनिया में संपत्ति पैदा हो जाती। उत्पादक कोई और है, कोई और प्रतिभा है पीछे। पूंजीवाद ने उस तरह की प्रतिभाओं को अवसर दिया

जो संपत्ति को पैदा करें और पूंजीवाद ने संपत्ति को पैदा करने का इन्तजाम किया। बड़ा इन्तजाम तो उसने यह किया है कि मनुष्य की जगह मशीन को लाने की कोशिश की, क्योंकि मनुष्य के हाथ से संपत्ति पैदा नहीं हो सकती। मनुष्य कितना ही श्रम कर ले, पेट भर ले तो बहुत है!

बुद्ध के जमाने में हिन्दुस्तान की आबादी दो करोड़ थी और यह आबादी दो करोड़ ही रहती, ज्यादा नहीं हो सकती थी, क्योंकि दस बच्चे पैदा होते और ९ बच्चों को मरना ही पड़ता। क्योंकि, न तो भोजन था, न दवा थी, न जगह थी, न मकान था, न इन्तजाम था। उनके शरीर को बचाने का कोई उपाय न था। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में दुनिया में 'एक्स्प्लोजन' हुआ मनुष्य जाति का। आज साढ़े तीन अरब लोग हैं। ये साढ़े तीन अरब लोग पूंजीवाद की व्यवस्था के कारण जीवित हैं, अन्यथा ये जीवित नहीं रह सकते थे। पूंजीवादी व्यवस्था के पहले कल्पना के बाहर है कि साढ़े तीन अरब आदमी इस पृथ्वी पर जी जाएं। पूंजीवाद ने क्या किया? मनुष्य की जगह मशीन को ईजाद किया, मनुष्य को हटाया श्रम से और मशीन को लगाया श्रम में। इसके दो परिणाम हुए— मशीन मनुष्य से करोड़ गुना काम कर सकती है, हजार गुना काम कर सकती है, लाख गुना काम कर सकती है। मशीन की संभावनाएं अनंत हैं, मनुष्य की संभावनाएं बहुत सीमित हैं। मशीन की वजह से संपत्ति का इतना ढेर लगना शुरू हुआ। और दूसरा काम, जैसे ही मशीन आयी, मनुष्य गुलामी से मुक्त हो सका।

पूंजीवाद की और बड़ी देन है– दासता का अंत, गुलामी की समाप्ति। अगर मशीन न आती तो आदमी की गुलामी कभी भी नहीं मिट सकती थी। आदमी की गुलामी मिटाना असंभव था, आदमी को गुलाम रहना ही पड़ता; क्योंकि आदमी से काम लेना था। और आदमी के पीछे या उसकी छाती पर सवार हो कोई, कोड़ा लेकर, तभी उससे हड्डी-तोड़ काम लिया जा सकता है। मशीन स्थापित हुई, 'सब्स्टीच्यूट' हुई, आदमी की गुलामी मुक्त हो गयी।

आज पृथ्वी पर आदमी गुलाम नहीं है, आज पृथ्वी पर आदमी मुक्त है, लेकिन समाजवाद ने एक झूठी और भ्रामक बात पैदा करनी शुरू की है। उसने पैदा करना शुरू किया है यह ख्याल कि संपत्ति और पूंजी श्रमिक पैदा कर रहा है। श्रमिक संपत्ति पैदा नहीं कर रहा है, श्रमिक सिर्फ संपत्ति के पैदा करने का बहुत गौण हिस्सा है। और आज नहीं तो कल श्रमिक व्यर्थ हो जायेगा, क्योंकि मशीन उसे पूरी तरह से 'सब्स्टीच्यूट' कर देगी। पचास साल के भीतर दुनिया में मजदूर, श्रमिक जैसा आदमी नहीं होगा। होने की जरूरत भी नहीं है, अशोभन है कि किसी

आदमी को मशीन का काम करना पड़े जो मशीन कर सकती है। श्रमिक व्यर्थ हो जायगा। संपत्ति के पैदा करने में श्रमिक धीरे-धीरे व्यर्थ होता गया और पचास साल में बिल्कुल बेकार हो जायेगा, श्रमिक की कोई जरूरत नहीं रह जायेगी, वह नानएसेंशियल, गैर जरूरी हिस्सा है। जरूरी हिस्सा उत्पादक बुद्धि है, प्रोडेक्टिव माइंड है। लेकिन समाजवाद ने एक भ्रम पैदा किया है कि संपत्ति 'मसल्स' से पैदा हुई है। झूठी है यह बात। संपत्ति मस्तिष्क से पैदा हुई है 'मसल्स' से नहीं। और अगर समाजवाद ने यह जिद की और 'मसल्स' को मस्तिष्क के ऊपर बिठा दिया, तो मस्तिष्क विदा हो जायेगा और 'मसल्स' वहीं पहुंच जायेगा जहां हजार साल पहले गरीबी और भुखमरी थी——उससे आगे नहीं। सारी संपत्ति मस्तिष्क की ईजाद है। और ध्यान रहे, सारे लोगों ने संपत्ति के पैदा करने का श्रम भी नहीं उठाया है। एक आइंस्टीन ईजाद करता है, सारे लोग फायदे लेते हैं। एक फोर्ड संपत्ति पैदा करता है, सारे लोगों तक संपत्ति बिखर जाती है। लेकिन ऐसा समझाया जा रहा है कि पूंजीपति जो है वह लोगों से संपत्ति शोषित करता है। इससे बड़ी झूठी कोई बात नहीं हो सकती है। जो संपत्ति है ही नहीं उसका 'एक्सप्लवायटेशन' कैसे होगा ? उस संपत्ति का शोषण हो सकता है जो कहीं हो। लेकिन जो संपत्ति कहीं है ही नहीं, उस का शोषण कसे हो सकता है ? पूंजीवाद संपत्ति का शोषण नहीं करता है, संपत्ति पैदा करता है; लेकिन जब संपत्ति पैदा होती है, तो दिखायी पड़नी शुरू होती है और हजारों आंखों में ईर्ष्या का कारण बनती है

समाजवाद के प्रभाव का कारण यह नहीं है कि हर आदमी हर दूसरे आदमी को समान समझता है। समाजवाद का बुनियादी प्रभाव का कारण मनुष्य की जन्मजात ईर्ष्या है—— उनके प्रति जो सफल हैं, उनके प्रति जो समृद्ध हैं, उनके प्रति जिन्होंने कुछ पाया, जिन्होंने कुछ खोजा, जिन्होंने कुछ बनाया। मनुष्य जाति का बड़ा हिस्सा एकदम आलस्य में रहा है, उसने कुछ भी पैदा नहीं किया है। मनुष्य जाति के बड़े हिस्से ने न तो ज्ञान पैदा किया है, न संपत्ति पैदा की है, न शक्ति पैदा की है। लेकिन मनुष्य जाति का बड़ा हिस्सा सचेत हो गया है। उसे दिखायी पड़ रहा है—— संपत्ति है, ज्ञान है, बुद्धि है, लोगों के पास कुछ है और निश्चित ही करोड़ों लोगों की ईर्ष्या को जगाया जा सकता है। रूस में जो क्रांति हुई है वह ईर्ष्या से, चीन में जो क्रांति हुई है वह ईर्ष्या से और इस देश में भी समाजवाद की जो बात हो रही है वह ईर्ष्याजन्य है।

ध्यान रहे, ईर्ष्या से कोई समाज निर्मित नहीं होता और यह भी ध्यान रहे,

ईर्ष्या से समाज का किया गया रूपांतरण फलदायी, सुखदायी, मंगलदायी नहीं होगा। यह भी ध्यान रहे कि ईर्ष्या से हम किसी व्यवस्था को तोड़ तो देंगे लेकिन नयी व्यवस्था का सृजन नहीं कर पायेंगे। ईर्ष्या क्रियेटिव नहीं है, डिस्ट्रक्टिव है। ईर्ष्या कभी भी सृजनात्मक शक्ति नहीं है। वह तोड़ सकती है, मिटा सकती है, बना नहीं सकती। बनाने की कल्पना ही ईर्ष्या में नहीं होती।

मैंने सुना है कि एक आदमी मरा। मरते समय उसने अपने बेटों को इकट्ठा किया और उनसे कहा कि मेरी एक इच्छा है उसे तुम पूरा कर देना। मेरे पास आओ, मुझे वचन दो। लेकिन उसके बड़े बेटे चुपचाप दूर ही बैठे रहे। वे अपने बाप को भलीभांति पहचानते थे। लेकिन छोटा बेटा नहीं जानता था, वह बाप के पास चला गया। बाप ने उसके कान में कहा कि तू ही मेरा असली बेटा है और तुझे मैं एक बड़ा दायित्व सौंपे जाता हूं। जब मैं मर जाऊं, तो मेरी लाश के टुकड़े-टुकड़े करके पड़ोसी के घर में फेंक देना। उसने कहा, क्या मतलब है आपका? तो उस आदमी ने कहा, कि जब मेरी आत्मा जा रही होगी स्वर्ग की तरफ, तो पड़ोसियों को जेलखाने की तरफ जाते देखकर मुझे बड़ी शांति मिलेगी। मेरा दिल बड़ा तृप्त हो जायगा। मकान पड़ोसी के पास बड़ा है, मेरे पास छोटा है। पड़ोसी के पास सुन्दर घोड़े हैं, मेरे पास नहीं। पड़ोसी के पास धन है, मेरे पास नहीं। इतना तो कर ही सकता हूं मैं कि मरने के बाद मेरी लाश के टुकड़े-टुकड़े करके पड़ोसियों के घर में फेंक दिए जाएं।

अब यह जो आदमी है, ईर्ष्या में जी रहा है। मकान बड़े हो सकते हैं सृजन से, ईर्ष्या से नहीं। हां, ईर्ष्या से बड़े मकान छोटे बनाये जा सकते हैं; लेकिन ईर्ष्या से छोटे मकान बड़े नहीं बनाये जा सकते। ईर्ष्या के पास सृजनात्मक शक्ति नहीं है। ईर्ष्या जो है मृत्यु की साथी है, जीवन की नहीं। लेकिन सारी दुनिया में समाजवाद का जो प्रभाव है वह ईर्ष्या उसकी बुनियाद में आधार है। लेकिन मजा यह है कि जिस गरीब को यह ईर्ष्या सता रही है (और शायद गरीब को उतनी नहीं सता रही है जितनी अमीर और गरीब के बीच के जो नेता खड़े हैं उनको सता रही है), यह ईर्ष्या अमीरों के खिलाफ जितना नुकसान पहुंचायेगी वह बड़ा नहीं है। इसका अंतिम नुकसान गरीबों को ही पहुंचने वाला है। क्योंकि अमीर जो संपत्ति पैदा कर रहा है वह संपत्ति अंततः गरीब तक पहुंच रही है, पहुंचती है, पहुंच ही जाती है। उसे रोकने का कोई उपाय नहीं है।

मैं यात्रा कर था, ट्रेन से दिल्ली जा रहा था। मेरे कम्पार्टमेंट में एक सज्जन थे। रास्ते में एक बड़ा मकान था और उस मकान के आस-पास दस-पांच

छोटे झोंपड़े। उन्होंने मुझे देख कर कहा, देखते हैं आप, यह मकान बड़ा हो गया है, इन मकानों को छोटा करके। मैंने उनसे कहा, आप गलत देख रहे हैं। इस बड़े मकान को बीच से हटा दें तो यह जो आस-पास दस मकान हैं ये बड़े नहीं हो जायेंगे, ये मकान नदारद हो जायेंगे। बड़े मकान के बनने की वजह से दस मकान भी आस-पास बन जाते हैं, बनने ही पड़ते हैं। कोई मकान अकेला नहीं बनता है। एक बड़ा मकान जब बनता है, दस छोटे मकान बन ही जाते हैं, क्योंकि उस बड़े मकान को बनायेगा कौन? उस बड़े मकान को बीच से हटा दें, तो आपकी गणित गलत है। मैंने उनसे कहा, यह दस मकान विदा हो जायेंगे। दुनिया में दस बच्चे पैदा होते थे, नौ बच्चे मरते थे। पूंजीवाद ने उन नौ बच्चों को भी बचा लिया। आज दस बच्चे पैदा होते हैं, सिर्फ एक बच्चा मरता है, नौ बच्चे बच जाते हैं। उन नौ बच्चों की भीड़ इकट्ठी हो गयी है। उनके पास छोटे मकान हैं, दुखद है यह बात। उनके पास अच्छे मकान होने चाहिए। लेकिन अच्छे मकान होने का यह सूत्र नहीं है कि बड़े मकान मिटा दिये जायें। अगर बड़े मकान मिट गये, तो मैं आपसे कहता हूं कि ये छोटे मकान विदा हो जायेंगे। ये बड़े मकान के पीछे आये हैं। ये नौ बच्चे जो बच रहे हैं दस में से, ये बड़े मकान के बनाने में बच रहे हैं। मजदूर को काम है, नौकरी है, रहने की जगह है, वह पूंजी के पैदा होने के कारण हुई है। इस पूंजी को बिखेर देने से मजदूर बचेगा नहीं। कोशिश हमें यह करनी चाहिए कि मजदूर भी कैसे पूंजीपति हो जाय? कोशिश हमें यह करनी चाहिए कि छोटे मकान कैसे बड़े हों? और अगर छोटे मकान बड़े बनाने हैं तो और बहुत बड़े मकान बनाने पड़ेंगे, तभी ये बड़े हो पायेंगे, अन्यथा ये बड़े नहीं हो पायेंगे। लेकिन तर्क कई बार बड़े भ्रांत जाते हैं।

चीन में जो चल रहा है वह यही ख्याल है कि हम बड़ा मकान मिटाकर छोटे मकान को बड़ा कर देंगे। नहीं, बड़ा मकान मिट जायगा और छोटा मकान जिसके पास है (अगर वह बड़ा मकान बना सकता होता तो उसने बहुत पहले बड़ा मकान बना लिया होता) वह अपनी 'लिथार्जी' में, अपने आलस्य में वापस लौट जायगा।

ख्रुश्चेव ने रूस से विदा होने से पहले अपने पद से जो एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह सोचने जैसी है। उसने कहा है, आज रूस के सामने जो बड़ा सवाल है वह यह है कि रूस में कोई भी काम करने को तैयार नहीं है। रूस के जवान काम करने को बिल्कुल उत्सुक नहीं हैं। बड़ी अजीब बात है। रूस के मजदूर काम करने में उत्सुक न हों, रूस का जवान काम करने में उत्सुक न हो। लिथार्जी में, आलस में, तामस में वापस लौट रहा है वह। स्टालिन ने जो उससे काम लिया था वह भी

जबरदस्ती था, इसलिए स्टालिन के मरने के बाद जो व्यवहार स्टालिन के साथ रूस में हुआ वह बिल्कुल ही तर्कसंगत मालूम पड़ता है। जिस क्रेमलिन के चौराहे पर, जिस रेड स्क्वायर पर जिन्दगी भर सलामी ली स्टालिन ने, उसी स्क्वायर से उसकी गड़ी हुई लाश को उखाड़कर हटा दिया गया है। क्योंकि जितने दिन स्टालिन जिन्दा था रूस पर प्रेत की भांति छाया रहा और गहरी हत्या करता रहा। गहरी हत्या के भय से काम चला, लेकिन हत्या का भय ढीला हुआ कि काम बन्द हुआ। पुँजीवाद ने 'इसेंटिव' पैदा किया है, एक प्रेरणा पैदा की है व्यक्ति के भीतर, कि वह संपत्ति को पैदा करे। संपत्ति को पैदा करने का एक आकर्षण पैदा किया है। वह आकर्षण पूंजीवाद के विदा होते ही विदा हो जायगा। हां, एक शर्त है: अगर पूंजीवाद पूरी तरह विकसित हो जाय और पूंजीवाद से समाजवाद सहज आये, तो यह घटना नहीं घटेगी। ऐसा हो सकता है। अमरीका में ऐसा संभव हो जायगा। यह कितना विरोधाभास है, पेराडोक्सिकल मालूम पड़ता है; लेकिन यही सत्य है कि आने वाले पचास वर्षों में अमरीका रोज समाजवाद की तरफ कदम उठायेगा और रूस रोज पूंजीवाद की तरफ कदम उठायेगा। अमरीका रोज समाजवादी होता जा रहा है बिना जाने, बिना किसी क्रांति के। क्यों? क्योंकि संपत्ति जब अतिरिक्त हो जाती है, तो व्यक्तिगत मालकियत व्यर्थ हो जाती है। व्यक्तिगत मालकियत तभी व्यर्थ होती है जब संपत्ति अतिरिक्त हो जाय. जरूरत से ज्यादा हो। अभी एक गांव में हम जायें, वहां पानी पर कोई कब्जा नहीं है, क्योंकि गांव में पानी बहुत ज्यादा है लोग कम हैं। कल गांव में पानी कम हो जाय और लोग ज्यादा हो जायं, तो पानी पर व्यक्तिगत मालकियत शुरू हो जायगी। आज हवा है मुक्त सबके लिए, कल हवा छोटी पड़ जाय, लोग ज्यादा बढ़ जायं, कल आक्सीजन कम हो जाय और लोग ज्यादा हो जायं, तो जिनके पास सुविधा है, समझ है, वे आक्सीजन के टैंक अपने घरों में बन्द कर लेंगे। व्यक्तिगत मालकियत शुरू हो जायगी। संपत्ति पर तब तक व्यक्तिगत मालकियत रहेगी ही जब तक संपत्ति कम है और लोग ज्यादा हैं। एक ही तर्कसंगत, एक ही स्वाभाविक संभावना है व्यक्तिगत संपत्ति के विदा होने की और वह यह है कि संपत्ति पानी और हवा की तरह अतिरिक्त मात्रा में पैदा हो जाय।

यह संभव हो जायगा। आज भी अमरीका में जिसे हम गरीब कहते हैं वह रूस के मापदंडों के हिसाब से अमीर है। आज जिसे रूस में हम बहुत सुविधा-संपन्न कहें वह भी अमरीका के गरीब से पीछे खड़ा हुआ है। यह बहुत आकस्मिक नहीं मालूम होता, यह बहुत चिन्तनीय नहीं मालूम होता, यह बहुत

विचारणीय नहीं मालूम होता कि पचास वर्ष की समाजवादी व्यवस्था के बाद भी रूस अभावग्रस्त मुल्क है। दस सालों से तो अपना भोजन भी खुद पैदा नहीं कर पा रहा है। आप ही अपना भोजन बाहर से मंगा रहे हैं ऐसा नहीं, रूस भी दस सालों से पूंजीवादी मुल्कों से भोजन खरीद रहा है। समाजवादी पेट को भी पूंजीवादी हाथों को ही भरना पड़ेगा, तो समाजवाद का क्या होगा? रूस में लिथार्जी वापस लौट आयी। असल में पूंजीवाद एक व्यक्तिगत प्रेरणा देता है प्रत्येक व्यक्ति को संपत्ति पैदा करने की। वह प्रेरणा खत्म हो जाय तो एक ही रास्ता है कि पीछे से बन्दूक लगाओ। लेकिन पीछे से बन्दूक स्थायी व्यवस्था नहीं हो सकती।

मैंने सुना है ख्रुश्चेव के संबंध में एक मजाक। ख्रुश्चेव एक पार्टी मीटिंग में बोल रहा था और बोलते वक्त वह स्टालिन की निन्दा कर रहा था। तो एक आदमी ने पीछे से खड़े होकर कहा कि महाशय, स्टालिन के जिन कामों की आप निन्दा कर रहे हैं और कह रहे हैं कि लाखों लोगों की हत्या की, साइबेरिया भेजा, जेल में डाला, मार डाला, सारे मुल्क को खून में डुबो दिया, जो ये बातें आप कह रहे हैं, जब स्टालिन कर रहा था तब भी आप स्टालिन के साथ थे। तब आप कहां चले गये थे? ख्रुश्चेव एक मिनट के लिए चुप हो गया। फिर उसने कहा– "जिन महाशय ने यह बात कही है कृपा करके अपना नाम और बता दें।" लेकिन वह आदमी फिर नहीं उठा। फिर ख्रुश्चेव ने कहा, "आप कृपा करके उठ करके अपनी शक्ल ही दिखा दें।" लेकिन उस आदमी का कोई पता नहीं चला। फिर ख्रुश्चेव ने कहा, "जिस वजह से आप अब दोबारा नहीं उठ रहे हैं, उसी वजह से मैं भी चुप रह गया। जिन्दा रहना था तो चुप रहना जरूरी था।"

पूंजीवाद संपत्ति पैदा करता है बड़े सहज ढंग से। किसी के पीछे कोई कोड़ा नही है, किसी के पीछे कोई बन्दूक नहीं है; लेकिन व्यक्ति की अपनी एक छोटी-सी दुनिया है, उसकी अपनी प्रेरणा है। अगर मेरी पत्नी बीमार है, तो मैं रात भर काम कर सकता हूं। लेकिन अगर कोई मुझसे कहे कि मनुष्यता बीमार है, तो मैं सोचूंगा– होगी। मनुष्यता इतनी दूर की बात हो जाती है कि उससे कोई संबंध नहीं बनता। उससे कोई प्रेरणा पैदा नहीं होती। अगर मुझसे कोई कहता है कि मेरे बेटे को पढ़ाना है, तो मैं गड्ढा खोद सकता हूं भरी धूप में। लेकिन कोई मुझे कहता है कि मनुष्यता को शिक्षित करना है, तो बात खो जाती है। कहीं मेरे ऊपर उसकी कोई चोट नहीं पहुंचती है। अगर कोई

मुझसे कहता है कि एक घर बनाना है अपने लिए। अपने लिए एक छाया करनी है और बगिया बनानी है जिसमें फूल खिलेंगे, तो समझ में आती है बात। जब कोई राष्ट्र के बगीचे की बात करने लगता है, तब बात खो जाती है। आदमी की चेतना का दायरा बहुत छोटा है — वैसे ही जैसे दिये का प्रकाश चार-पांच फुट के आस-पास पड़ता है — ऐसे ही आदमी की चेतना है। उसकी चेतना छोटे-से घेरे पर पड़ती है। जिस घेरे पर पड़ती है उसी का नाम परिवार है। अभी आदमी परिवार से ज्यादा बड़े घेरे के योग्य नहीं है। परिवार के बाहर जैसा बड़ा घेरा होता है वैसा ही आदमी सुस्त होता चला जाता है, उसकी प्रेरणा खोती चली जाती है। राष्ट्र, मनुष्यता, मनुष्य जाति, विश्व — इतने बड़े घेरे हैं कि मनुष्य की चेतना पर इनका कोई कहीं परिणाम नहीं होता। पूंजीवाद ने अपनी व्यक्तिगत चेतना के आधार पर संपत्ति के सृजन की एक दौड़ पैदा की है, और पूंजीवाद ने संपत्ति पैदा की है, ज्ञान पैदा किया है। ईसा के मरने के बाद १८५० वर्षों में जितना ज्ञान दुनिया में पैदा हुआ, पूंजीवाद के डेढ़ सौ वर्षों में उतना ज्ञान पैदा हुआ। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना ज्ञान पैदा हुआ, पिछले पन्द्रह वर्षों में उतना ज्ञान पैदा हुआ। पिछले पन्द्रह वर्षों में जितना ज्ञान पैदा हुआ, पिछले पांच वर्षों में उतना ज्ञान पैदा हुआ है। पुरानी दुनिया जहां १८५० वर्ष में जितना काम करती थी वही पूंजीवाद की दुनिया पांच वर्ष में पूरा कर रही है। यह एक चमत्कार है ! लेकिन हम पूंजीपति को गाली दिये जा रहे हैं बिना यह समझे कि वह मार्ग तैयार कर रहा है जहां से संपत्ति बरस जायेगी। वह मार्ग तैयार कर रहा है जहां वह प्रत्येक व्यक्ति को संपत्ति के सृजन में संलग्न कर देगा। वह मार्ग तैयार कर रहा है जहां से धीरे धीरे संपत्ति अतिरेक में हो जायेगी। और जिस दिन संपत्ति अतिरेक हो जायेगी उस दिन पूंजीवाद का बेटा — समाजवाद सहज पैदा होगा।

मैं जब समाजवाद से सावधान की बात कहता हूं, तो मेरा मतलब है गर्भ का काल पूरा होने से । पूंजीवाद गर्भ का काल है, उसके नौ महीने पूरे हो जाने दें। पूंजीवाद की ऐतिहासिक प्रक्रिया पूरी हो जाने दें तभी बात बनेगी। मार्क्स को भी कल्पना न थी कि रूस में पूंजीवाद समाप्त होगा, क्योंकि रूस में तो पूंजीवाद था ही नहीं। मार्क्स को कल्पना ही नहीं थी कि चीन साम्यवादी हो जायेगा, क्योंकि चीन तो अत्यंत दरिद्र था। मार्क्स को कल्पना थी कि अमरीका या जर्मनी में पूंजीवाद पहले टूटेगा; लेकिन टूटा रूस में, टूटा चीन में। तोड़ने की कोशिश चलती है हिन्दुस्तान में। ये सब गरीब मुल्क हैं जिनके पास

पूजी की व्यवस्था ही नहीं, है लेकिन इनके पास गरीबों का बहुत बड़ा समूह है। उस समूह की ईर्ष्या को जगाया जा सकता है। मार्क्स का चिंतन तो बहुत वैज्ञानिक था, वह ठीक कह रहा था कि जहां पूंजीवाद अपनी ठीक व्यवस्था को विकसित कर लेगा वहां से उसको विदा हो जाना पड़ेगा, क्योंकि जब संपत्ति ज्यादा हो जायेगी तो व्यक्तिगत संपत्ति का कोई अर्थ नहीं रह जाता। लेकिन उसे पता नहीं था कि जो क्रांतियां होंगी वे पूंजीवाद के संपत्ति के पैदा करने से नहीं, वह गरीब की ईर्ष्या को भड़का कर हो जाएगी। जिन मुल्कों में समाजवाद आया वे गरीब हैं। आना चाहिए था अमरीका में, वहां वैसा समाजवाद नहीं आया; लेकिन वहां एक अर्थ में समाजवाद आ रहा है चुपचाप, साइलेंटली। **असल में जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह बैंड बाजा बजाकर नहीं आता, जो भी महत्वपूर्ण है वह चुपचाप आता है। बीज टूटता है तो कोई खबर नहीं होती, और सूरज निकलता है तो कोई घोषणा नहीं होती। जिन्दगी में जो भी महत्वपूर्ण है चुपचाप आता है। आ जाता है तभी पता चलता है कि आ गया।** लेकिन जो भी बैंड बाजे बजाकर आता है, समझना कि कुछ जल्दी आने की कोशिश चल रही है। समाजवाद बैंड बाजे बजाकर आना चाहता है और बिना इस बात को जाने हुए कि पूंजीवाद पूरा न हो तो समाजवाद नहीं आ सकता है। आज हिन्दुस्तान में वह संपत्ति को बांट ले और पूंजी की बढ़ती हुई, बनती हुई बिल्कुल प्राथमिक व्यवस्था को तोड़ दे, तो क्या होगा? गरीब की ईर्ष्या तृप्त होगी, लेकिन गरीब और गरीब होगा। गरीब की ईर्ष्या तृप्त होगी, लेकिन गरीब भूखों मरेगा। गरीब की ईर्ष्या तृप्त होगी, लेकिन गरीब अपने हाथ से आत्मघात कर लेगा। हिन्दुस्तान में पूंजी की बनती हुई व्यवस्था को सब तरह का सहयोग चाहिए। आज तो हिन्दुस्तान को पूंजीवादी होने का ठीक अर्थों में निर्णय लेना चाहिए कि हम पचास वर्ष में ठीक पूंजीवाद पैदा कर लें। समाजवाद उसके पीछे आने ही वाला है, वह अपने आप आ जायेगा। उसे लाने की किसी इंदिरा को जरूरत नहीं पड़ेगी, उसे लाने के लिए किसी की जरूरत नहीं पड़ेगी। वह आ जायेगा। क्योंकि मेरी समझ ऐसी है कि पूंजीवाद कौन लाया? पूंजीवाद आया। जब सामंतवाद की व्यवस्था उस जगह पहुंच गयी, तो पूंजीवाद आया। समाजवाद को लाने की जरूरत नहीं है। समाजवाद भी आयेगा, लेकिन धैर्य चाहिए। वह धैर्य बिल्कुल नहीं है। और अधैर्य इतना नुकसान कर सकता है जिसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल हो जायगा। फिर कौन हिसाब लगायेगा?

मैंने सुना है एक बार रूथचाइल्ड के पास एक समाजवादी गया और

उसने जाकर कहा कि तुमने सारे देश की संपत्ति हड़प कर रखी है। बांट दो तो सारा देश अमीर हो जायगा। रूथचाइल्ड ने उसकी बात सुनी, कागज पर कुछ हिसाब लगाया और उससे कहा कि यह ६ आने आपके हिस्से पड़ते हैं, आप लीजिये और जो जो आयेंगे उनके हिस्से जो पड़ता है उनको देता जाऊंगा। मेरे पास जितनी संपत्ति है अगर मैं सारी दुनिया में बांटूं तो एक-एक आदमी को छः छः आने बांट दूंगा। जो भी आयेगा इन्कार नहीं करूंगा। लेकिन क्या आप सोचते हैं कि ये ६ आने आपको मिल जायेंगे, तो समाजवाद आ जायेगा ? लेकिन रुथचाइल्ड के पास छः आने थे। बिड़ला, टाटा, साहू, डालमिया के पास ६ आने भी नहीं हैं। हमारे पास पूंजीपति ही नहीं हैं। हमारे पास पूंजीपति अभी अंकुरित हो रहा है। आज बंबई में थोड़ी सुविधा दिखायी पड़ती है, लेकिन बम्बई हिन्दुस्तान नहीं है। हिन्दुस्तान पूरा का पूरा गरीब देश है और हिन्दुस्तान पूरा का पूरा इस तरह जी रहा है जैसे औद्योगिक क्रांति के पहले योरोप था। अभी औद्योगिक क्रांति भी यहां नही हो पायी और हम सपने देख रहे हैं आगे के। औद्योगिक क्रांति हो, तो सारा मुल्क उद्योग से भर जाय, सारा मुल्क संपत्ति पैदा करे, सारे मुल्क में करोड़ों टाटा-बिड़ला हों। संपत्ति मुल्क में पैदा हो जाय तो कोई टाटा, कोई बिड़ला संपत्ति के विभाजन को न रोक पायेंगे। बल्कि मेरी समझ तो यह है कि वे ही संपत्ति इतनी पैदा कर जायेंगे कि वह बांटी जा सके, अन्यथा वह बांटी भी नहीं जा सकती। समाजवाद से सावधान होने का यह मतलब नहीं है कि मैं समाजवाद का शत्रु हूं। मैं तो समझता हूं, आज जो समाजवादी हैं वे समाजवाद के शत्रु हैं, क्योंकि उन्हें पता नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं। वे जिस शाखा को काट रहे हैं उसी पर बैठे हुए हैं। वे गिरेंगे, अपने साथ सबको लेकर डूब जायेंगे। हिन्दुस्तान बहुत लंबे दिनों से गरीब है। सोच–विचार के कदम उठाना, कहीं ऐसा न हो कि जो संपत्ति पैदा हो रही है, उसकी व्यवस्था टूट जाय। और हम जो रोज देखते हैं, लेकिन हम अंधे मालूम होते हैं और ऐसा मालूम होता है कि हमने तय कर लिया है कि हम आंख खोल कर नहीं देखेंगे। सरकार जिस काम को हाथ में लेती है वही नुकसान पहुंचाने लगता है। निजी उद्योगों में जितनी संपत्ति लगी है, सरकारी उद्योगों में उससे दुगुनी लगी है, लेकिन सब सरकारी उद्योग नुकसान पहुंचा रहे हैं। और सरकार कहती है कि बाकी जो निजी उद्योग हैं वे भी सरकार के हो जायं तो हम लाभ ही लाभ पहुंचा देंगे।

यह भी ध्यान रहे, कि समाजवाद की आड़ में कौन खड़ा है ? समाजवाद

की बात चलती है, लेकिन जो आता है वह होता है राज्यवाद। समाजवाद का, सोशलिज्म का, नाम चलता है, लेकिन जो आता है वह होता है स्टेट कैपिटलिज्म, वह होता है राज्य पूंजीवाद। समाजवाद का मतलब होता है—समाज के हाथ में संपत्ति हो; लेकिन समाज के हाथ में संपत्ति कहां आती है? हां, समाज के हाथ की सारी संपत्ति राज्य के हाथ में पहुंच जाती है। जहां बंटे हुए पूंजीपति थे बहुत, वहां एक ही पूंजीपति रह जाता है – राज्य। और राज्य की कुशलता हम देख रहे हैं। हमारे मुल्क में राज्य जितना अकुशल है उतना गांव का छोटा-सा दूकानदार भी अकुशल नहीं है। आज राज्य जितना मूढ़ सिद्ध हो रहा है, उतना हिन्दुस्तान का साधारण-सा किराना बेचने वाला और ठेले पर काम करने वाला आदमी भी मूढ़ नहीं है। इस राज्य के हाथ में सारी संपत्ति दे देने का ख्याल है, सारे उत्पादन के स्रोत दे देने का ख्याल है! अगर हिन्दुस्तान ने मरने का ही तय कर रखा है तब बात दूसरी है। इसे राज्य के हाथ में जाकर खतरा होगा। और यह भी ध्यान रहे कि राज्य की सत्ता जिनके हाथ में है वे वैसे ही पागल हो जाते हैं, वे संपत्ति की सत्ता को देखने के लिए राजी नहीं हैं कि किसी और के हाथ में संपत्ति हो। इसलिए संपत्ति की सत्ता भी अपने हाथ में चाहते हैं। असल में राज्य के मद में जो पागल हैं सारी दुनिया के लोग, वे चाहते हैं कि संपत्ति की ताकत भी उनके हाथ में हो, तब संपूर्ण शक्ति उनके हाथ में हो जाती है—धन की भी, राज्य की भी। अकेले राज्य की शक्ति ही उन्हें दीवाना कर देती है, धन की शक्ति भी उनके हाथ में पहुंच जाय तब वे निरंकुश हो जाते हैं। फिर उनके ऊपर कुछ भी नहीं किया जा सकता। आखिर, स्टालिन को हटाने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता, हिटलर को हटाने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता। क्या आपको पता है, हिटलर भी सोशलिस्ट था? उसकी पार्टी का नाम भी नेशनलिस्ट सोशलिस्ट पार्टी था। वह भी समाजवादी था। माओ को हटाने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता। और यह भी ध्यान रहे कि आज दुनिया में राज्य के हाथ में इतनी ताकतें हैं कि अगर धन की ताकत भी उसके हाथ में चली जाय, तो व्यक्ति बिल्कुल नपुंसक (इम्पोटेंट) हो जाता है। पूरा राष्ट्र नपुंसक हो जाता है। फिर व्यक्ति के पास कोई शक्ति नहीं रह जाती। यह शायद आपको पता न हो कि राजनीतिक स्वतंत्रता हो, आर्थिक स्वतंत्रता हो तो ही व्यक्ति की वैचारिक स्वतंत्रता शेष रहती है। अगर आर्थिक और राजनीतिक शक्तियां एक ही ग्रुप के हाथ में चली जायं, तो व्यक्ति के पास विचार

की कोई स्वतंत्रता नहीं रह जाती। रूस में विचार की कोई स्वतंत्रता नहीं है। चीन में भी नहीं है। हिन्दुस्तान में भी कल नहीं होगी। लेकिन एक-एक कदम चलकर आती हैं ये बातें, पहले से पता नहीं चलता।

एक व्यक्ति की संपत्ति छीन लो, संपत्ति के छिनने के साथ ही उसके व्यक्तित्व का ९० प्रतिशत हिस्सा समाप्त हो जाता है। ९० प्रतिशत विदा हो गया तो संपत्ति छिनते ही उसके सोच-विचार की क्षमता भी छिन जाती है; क्योंकि उसके पास व्यक्ति होने की सामर्थ्य ही क्षीण हो गयी। राज्य के पास सारी ताकत पहुंच जाय, तो व्यक्ति की हत्या हो जायेगी। इस समय सारी दुनिया में, इस देश में भी, बड़े-से-बड़े सवाल जो हैं वह ये हैं कि व्यक्ति को कैसे बचाया जाय? राज्य हड़प लेना चाहता है सब, लेकिन इस ढंग से हड़पता है और वह लोगों को समझा के हड़पता है कि वह कहता है, तुम्हारे ही हित में हड़प रहे हैं। यह जो हम संपत्ति और उत्पादन के साधन अपने हाथ में लेते हैं वह तुम्हारे लिए। इसलिए जयजयकार भी होगा और वे ही लोग जयजयकार करेंगे जिनकी गर्दन पर फंदा कसा जा रहा है। वे ही लोग जयजयकार करेंगे जो फांसी पर लटक जायेंगे। उन्हें पता भी नहीं चलेगा। संपत्ति एक बार राज्य के हाथ में चली गयी तो राज्य निरंकुश है, फिर राज्य के सामने व्यक्ति की क्या सामर्थ्य है, फिर व्यक्ति की क्या हैसियत, व्यक्ति की क्या आत्मा है? रूस में पचास साल से पचास आदमियों का एक छोटा-सा ग्रुप, एक छोटा-सा समूह मालिक बना बैठा है। उस ग्रुप के हाथ के बाहर ताकत नहीं जाती है। स्टालिन मरे, चाहे ख्रुश्चेव आ जाये, चाहे कोसीजन रहे, चाहे ब्रजनेव हो—कोई भी हो, वह पचास आदमियों का छोटा-सा ग्रुप सारे मुल्क की छाती पर हावी है। कोई इन्कार नहीं हो सकता – क्योंकि विरोध करने के पहले जबान कट जाय, इन्कार करने के पहले आदमी का कोई पता न चले! राज्य के हाथ में जब पूरी शक्ति हो, तो व्यक्ति क्या कर सकेगा? इसलिए ध्यान रहे, राज्य की शक्ति निरंतर कम करनी है, बढ़ानी नहीं है। क्योंकि अंततः एक ऐसा समाज चाहिए जिसमें राज्य एक काम करनेवाली व्यवस्था रह जाय। मैं नहीं सोचता एक खाद्यमंत्री का कोई ज्यादा मूल्य होना चाहिए। क्या मूल्य होना चाहिए? जो घर में एक रसोइए का मूल्य होता है। प्रांत के लिए रसोइए का मूल्य है खाद्यमंत्री का। एक बड़ा रसोइया है वह। अगर अच्छा खाना प्रांत को खिलाता है, तो कभी-कभी उसकी प्रशंसा करनी चाहिए, लेकिन रसोइए से ज्यादा नहीं। कभी टिप भी देनी चाहिए उसको, लेकिन

रसोइए से ज्यादा नहीं। लेकिन खाद्यमंत्री रसोइया नहीं है। उसके पास ताकत है। लेकिन वह यह जानता है कि उसकी ताकत में एक कमी है और वह कमी यह है कि लोगों के पास व्यक्तिगत संपत्ति है। यह व्यक्तिगत संपत्ति बगावत कर सकती है व्यक्तिगत संपत्ति विरोध कर सकती है। और जिसके पास व्यक्तिगत संपत्ति है उसके पास व्यक्तिगत सोच-विचार का मौका है। यह भी वह छीन लेना चाहता है।

राजनीतिज्ञ बहुत अम्बीशस है। वह बहुत महत्वाकांक्षी है। वह सारी शक्ति को अपने हाथ में ले लेना चाहता है। जिस दिन राज्य के हाथ में पोलिटिकल पावर और इकोनामिक पावर दोनों हो जाती हैं उस दिन क्रांति का, बगावत का, विद्रोह का कोई उपाय नहीं रह जाता। यह कैसे मजे की बात है कि रूस में क्रांति हुई, लेकिन रूस अब अकेला मुल्क है जहां क्रांति नहीं हो सकती, क्योंकि राज्य के पास इतने अद्‌भुत साधन हैं, सब दीवालों के पास कान हैं, राज्य का जाल सब तरफ फैला हुआ हुआ है। पति भी अपनी पत्नी से बोलते वक्त दो दफे सोच लेता है कि यह कहना है कि नहीं कहना है; क्योंकि क्या भरोसा, खबर कर दे। बाप अपने बेटे से भी बात खुलकर नहीं कर पाता; क्योंकि खुलकर बात करना खतरनाक है! हो सकता है, बेटा यंग कम्युनिस्ट हो, जवान कम्युनिस्ट के ग्रुप का सदस्य हो और खबर पहुंचा दे। क्योंकि एक-एक बेटे को समझाया जा रहा है कि बाप की कोई कीमत नहीं है, कीमत है राष्ट्र की। पत्नी की कोई कीमत नहीं है, कीमत है समाज की। समाजवाद एक बड़ी भ्रांत बात समझा रहा है कि व्यक्ति की कोई कीमत नहीं है। जबकि एकमात्र कीमत व्यक्ति की है। समाज है क्या? समाज एक कोरा शब्द है। व्यक्ति है वास्तविक, व्यक्ति है यथार्थ। समाज तो सिर्फ जोड़ है। लेकिन समाजवाद ने इतना शोरगुल मचाया है कि जो नहीं है उसकी कीमत है--समाज की, और जो है उसकी कोई कीमत नहीं है--व्यक्ति की कोई कीमत नहीं है। इसलिए व्यक्ति को समाज की बलिवेदी पर चढ़ाया जा सकता है। हमेशा से व्यक्ति को चढ़ाया जाता रहा है, ऐसे देवताओं के लिए जो नहीं हैं। कभी भगवान के लिए, कभी काली के लिए, कभी किसी यज्ञ में। अब नया देवता है--समाज और उसके पीछे असली देवता खड़ा है--राज्य। इनपर व्यक्ति को चढ़ाया जा रहा है। काट डालो सबको, क्योंकि व्यक्ति की कोई कीमत नहीं है, कीमत है सिर्फ समाज की। समाज कहां है? उससे कहीं मिलना नहीं हुआ। बहुत खोजता हूं, सब जगह जाता हूं, पूछता हूं--समाज कहां है? जगह जगह पता

मिलता है कि वहां मिलेगा। वहां जाता हूं वहां भी व्यक्ति ही मिलते हैं। जब भी मिलेगा, व्यक्ति मिलेगा। व्यक्ति का मूल्य चरम है, अल्टीमेट वेल्यू है। व्यक्ति के मूल्य को खोना खतरनाक है। हां, निश्चित ही किसी दिन समाजवाद आयेगा; लेकिन व्यक्ति को समाप्त करके नहीं, व्यक्ति को तृप्त करके, व्यक्ति को 'फुलफिल' करके, व्यक्ति को पूरा करके। व्यक्ति को मिटा करके जो समाजवाद आता है उससे सावधान होने की जरूरत है। वह समाजवाद नहीं है, वह व्यक्ति की हत्या है और समाजवाद के पीछे खड़ा है स्टेट, खड़ा है राज्य और खड़े हैं राजनीतिज्ञ। उनको कठिनाई मालूम होती है कि ताकत कहीं भी बंटी हो—सारी ताकत उनके हाथ में होनी चाहिए। और यह ध्यान रहे, यह अंतिम बात आज कहना चाहता हूं कि राज्य के पास इतनी ताकतें कभी भी न थीं जितनी आज हो सकती हैं। क्योंकि टेक्नोलाजी ने ऐसा विकास किया है जिसका हमें पता नहीं।

अभी एक मेरे मित्र ने एक चित्र मेरे पास भेजा। वह चित्र देखकर मैं कंप गया। उस रात मैं सो नहीं सका, बहुत चिन्तित हो उठा। लेकिन शायद ही और कहीं कोई चिन्ता उस संबंध में हुई हो। सारी दुनिया में खबरें छपीं– एक वैज्ञानिक ने एक घोड़े की खोपड़ी को काटकर उसमें एक इलेक्ट्रोड रख दिया है, एक यंत्र रख दिया है, भीतर खोपड़ी बन्द कर दी गयी। घोड़े को कुछ पता नहीं। अब वायरलेस से उस घोड़े को कहीं से, हजारों मील दूर से इशारा किया जा सकता है। जो भी इशारे किये जायेंगे, घोड़े को वही करना पड़ेगा; क्योंकि घोड़े को लगेगा कि वे इशारे उसके भीतर से आ रहे हैं। हजार मील दूर से वह वैज्ञानिक कहे कि घोड़ा पैर उठाये, इशारा करे पैर उठाने का तो घोड़ा पैर उठायेगा। कहे नाचो, तो वह नाचेगा। एक मित्र ने मुझे वह तस्वीर भेजी और उसने कहा कि कितना बड़ा आविष्कार है ! मैंने उसे वापस तस्वीर भेजी और लिखा कि अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण ! क्योंकि यह इलेक्ट्रोड, आज नहीं कल, आदमी की खोपड़ी में राज्य भी लगा देगा। फिर विद्रोह असंभव है। केमिकल रेवोल्यूशन हो रहा है। ऐसे ड्रग्स खोज लिये गये हैं, जो क्रांति को असंभव कर दें, क्योंकि यह बात पकड़ ली गयी है कि जो लोग विद्रोही होते हैं उनके शरीर में, उनके व्यक्तित्व में कुछ तत्व होते हैं जो गैर विद्रोही में नहीं होते। तो अब ऐसे ड्रग्स एल. एस. डी., मेस्केलीन हैं। और और ड्रग्स भी खोजे जा रहे हैं। कल यह हो सकता है कि आपके गांव के रिजर्वायर में, तुलसी लेक में, पवई लेक में केमिकल्स डाल दिये जायं। पूरा गांव पिये। उसे पता भी न चले कि पानी में

कुछ है और गांव में सारे व्यक्तियों के भीतर से वे तत्व क्षीण हो जायं जो बगावत कर सकते हैं, जो कह सकते हैं 'नो'——नहीं, वे तत्व विदा हो जायं। राज्य के हाथ में आज पूरी ताकत जाना बहुत खतरनाक है, क्योंकि उसके पास इतनी टेक्नोलोजी है कि वह व्यक्ति को बिल्कुल ही पोंछ सकता है। माइण्ड-वाश की नयी नयी ईजादें हैं। किसी भी आदमी की स्मृति पोंछी जा सकती है। छः महीने आदमी को बन्द कर दिया जाय और इलेक्ट्रिक के शाक हैं, केमिकल्स ड्रग्स हैं और माइण्ड-वाश के मैथड्स हैं——उससे उसकी स्मृति पोंछी जा सकती है। अगर वह कहता था कि मैं विरोधी हूं तो उसकी स्मृति विदा हो जायेगी, उसे पता नहीं रहेगा कि मैं कौन हूं? अगर वह कहता था कि मेरा यह ख्याल है, तो उसका ख्याल खो जायेगा; क्योंकिं वह यही नहीं बता सकेगा कि मैं कौन हूं? मेरा ख्याल क्या है? वह छोटा बच्चा हो जायेगा, उसको क ख ग से फिर सिखाना पड़ेगा। उसे भाषा, नाम सब फिर से सीखने पड़ेंगे।

जब इतनी ताकत विज्ञांन दे रहा हो राज्य को, और धन की भी सारी ताकत राज्य के हाथ हो और प्रशासन की भी सारी ताकत राज्य के हाथ में ही, तो हम अपने हाथ से मनुष्य की हत्या का आयोजन कर रहे हैं। जब कि राजनीतिज्ञ इस योग्य नहीं है। सच तो यह है कि राजनीतिज्ञ ने मनुष्य के इतिहास में जो किया है उसमें सिवाय अयोग्यता के उसने योग्यता कभी भी सिद्ध नहीं की। राजनीतिज्ञ के हाथ से सत्ता वापस लौटनी चाहिए, उसे बढ़ाने की कोई भी जरूरत नहीं है। वह भी जानता है कि अगर वह कहे कि राज्य के हाथ में सब होना चाहिए, तो लोग कहेंगे कि नहीं, तो वह एक दूसरा चेहरा बनाता है। वह कहता है कि समाज के हाथ में सब होना चाहिए। समाज के पास कोई हाथ नहीं है इसलिए फिर राज्य के हाथ में ही सब चला जाता है।

आज सोशलिज्म के नाम से दुनिया में जो भी चल रहा है वह स्टेट केप्टलिज्म है, वह राज्य पूँजीवाद है। और मैं मानता हूं कि राज्य पूंजीवाद से व्यक्ति पूंजीवाद श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ इसलिए है कि व्यक्ति स्वतंत्र है। श्रेष्ठ इसलिए है कि प्रत्येक व्यक्ति को पूंजी पैदा करने की प्रेरणा है। श्रेष्ठ इसलिए है कि शक्ति विभाजित और विकेंद्रित है। श्रेष्ठ इसलिए है कि संपत्ति अगर कल अतिरिक्त मात्रा में पैदा हुई तो समाजवाद आयेगा, आना चाहिए, लेकिन लाना नहीं है। लाया हुआ समाजवाद खतरनाक सिद्ध होगा।

थोड़ी देर के लिए सोचें कि एक माली को बीज में से अंकुर निकालना

है, तो अंकुर आयेगा कि निकालना पड़ेगा? अगर निकाला तो संभव है बीज भी टूट जाय और अंकुर न निकले। लेकिन आने देना है, तो माली क्या करे? माली वह व्यवस्था करे जिससे अंकुर आता है। व्यवस्था करे खाद की, बीज को डाले जमीन में, पानी डाले, धूप को आने दे, आयेगा बीज, जरूर आ जायगा, अंकुर भी फूटेगा, वृक्ष भी बड़ा होगा।

अगर समाजवाद लाना हो तो पूंजीवाद के बीज को ठीक से सिंचित करने की जरूरत है। यह मेरी बात लोगों को उल्टी मालूम पड़ती है। पर यह सीधी और साफ है। अगर पूंजीवाद ठीक से विकसित होता है तो उसके भीतर से समाजवाद आना ही है; लेकिन पूंजीवाद अपना काम पूरी तरह कर ले तब विदा हो। लेकिन आज तो पूंजीवाद जो है वह भी डरा हुआ है। वह भी हिम्मत से नहीं कह सकता कि पूंजीवाद के होने का भी कोई कारण है। वह भी कहता है कि नहीं, समाजवाद ठीक है। उसके कारण हो गये हैं। वह भी भयभीत है, वह भी चारों तरफ भीड़ से डरा हुआ है, वह भी नारे और झंडे और आवाजों से घबरा गया है। वह कहता है, तो फिर समाजवाद ही ठीक। बड़े से बड़ा पूंजीपति मैं देखता हूं, घबरा रहा है। उसे लग रहा है कि उसने कोई पाप किया है। बड़े आश्चर्य की बात है। पूंजीवाद ने इतने बड़े समाज को जिन्दा रखने की व्यवस्था की, इतने अधिक मनुष्यों को जीवित रखने का उपाय किया, संपत्ति पैदा की, गुलामी खत्म की, मनुष्य की जगह मशीन को लाने का उपाय किया और अंततः समाजवाद उससे आयेगा; लेकिन वही पूंजीवाद की व्यवस्था में जो कारीगर है वह भी घबरा गया है। आइजनहावर ने लिखा है कि एक कम्युनिस्ट से मैं बातें करता था तो मैं उत्तर नहीं दे पाता था; क्योंकि मुझे भी लगता तो यह था कि यह ठीक ही कह रहा है। आइजनहावर के पास भी तर्क नहीं है। पूंजीवाद के पास तर्क नहीं है, पूंजीवाद के पास दर्शन नहीं है, तो पूंजीवाद मरेगा। मैं चाहता हूं, पूंजीवाद के पास अपना तर्क हो, अपना दर्शन हो ताकि **वह ठीक से जी सके और समाजवाद को जन्म देने योग्य हो सके।** समाजवाद पूंजीवाद की संतान है और बाप अगर अस्वस्थ रहे, तो ध्यान रखना, बेटा स्वस्थ होने वाला नहीं है। लेकिन बाप को मारकर बेटे को पैदा करने की कोशिश चल रही है। मां की हत्या करके गर्भ निकालने की कोशिश चल रही है। इन सब नासमझों से सावधान होने की जरूरत है।

★

कल कभी नहीं आता
जो आता है वह
आज है,
अभी है!

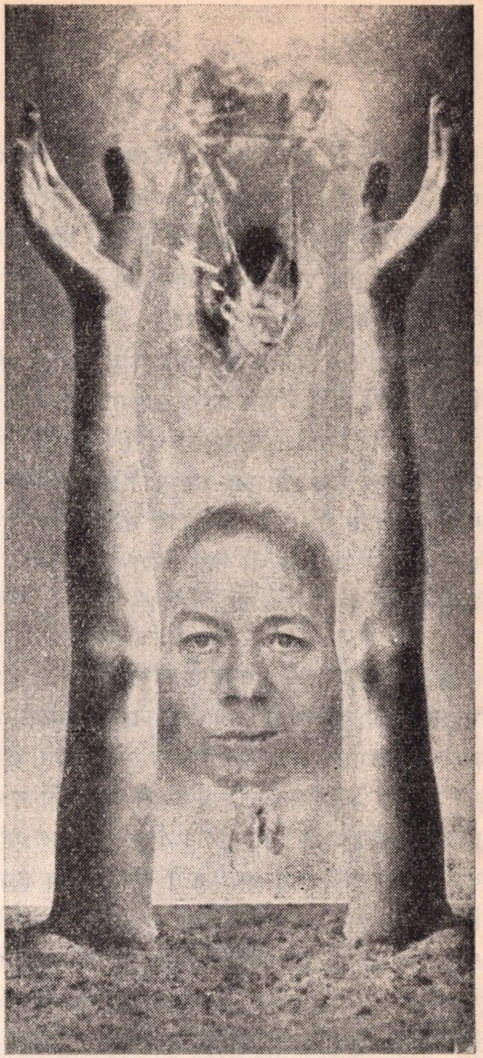

भ वि ष्य का त ना व

संकलन : ईश्वर भाई

मनुष्य का मन एक बोझ है—बोझ है उस अतीत का। लेकिन मनुष्य का मन एक तनाव भी है, तनाव है भविष्य का। अतीत के बोझ को हटा देने की जहां जरूरत है, वहां भविष्य के तनाव से मुक्त हो जाना भी उतना ही आवश्यक है। भविष्य भी बहुत बड़े तनाव की तरह मनुष्य के मन पर सदा मौजूद है। भविष्य का तनाव बहुत रूपों में हमारे मन को पकड़े है। एक तो हम आज में जीते ही नहीं, हम सदा कल में जीते हैं, और कल में कोई भी नहीं जी सकता, जीना सदा आज है, अभी है।

एक सुबह युधिष्ठिर बैठे हैं अपने झोपड़े पर, बनवास के दिनों में और एक भिखारी ने भिक्षा-पात्र उनके सामने फैलाया है। युधिष्ठिर ने कहा, "कल ले लेना, कल आ जाना, कल दे दूंगा।" भीम बैठा हुआ सुनता था, वह जोर से हंसने लगा। पास में पड़े हुए घंटे को उठाकर वह बजाने लगा और गांव की तरफ भागने लगा। युधिष्ठिर ने पूछा, "क्या हुआ है तुझे, पागल हो गया?" भीम ने कहा, "पागल नहीं हुआ हूं। यह जानकर बहुत खुश हुआ हूं कि मेरे भाई ने कल कुछ करने का वायदा किया है। जाऊं, गांव में खबर कर आऊं कि मेरे भाई ने समय को जीत लिया है। क्योंकि मैंने सुना नहीं है आज तक कि कल कोई भी कुछ कर सका हो। तुमने कहा है कल देंगे। जाऊं खबर कर आऊं गांव में, क्योंकि इतिहास में ऐसी घटना नहीं घटी है। बहुत मजे की बात है, कल तो कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो भी किया जा सकता है, अभी और यहां आज, इसी क्षण।"

जिस कल की हम बात करते हैं, वह कल्पना के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं है, वह कभी नहीं रहेगा। कल कभी नहीं आता, जो आता है वह आज है, अभी है। लेकिन हमारा मन जीता है कल में। हम आज के जीने को कल पर स्थगित करते हैं। जो अभी हो सकता है उसे कल पर छोड़ते हैं और कल कभी नहीं होगा। फिर यह कल की लंबी धारा, आनेवाले कलों की लंबी कल्पना मन पर बैठती चली जाती है, मन को खींचती चली जाती है। इसका बोझ बहुत ज्यादा है वह हमें पता नहीं। हमें उन्हीं बोझों का पता चलता है जिनके हम आदी नहीं होते और भविष्य के बोझ के हम पैदा होने के क्षण के साथ आदी हो जाते हैं, यह हमें पता ही नहीं चलता। यूरी गागारिन जब पहली दफा अंतरिक्ष में गया तो उसने लिखा कि पहली बार मुझे पता चला कि पृथ्वी पर कितना बोझ था। लेकिन हमें कुछ पता नहीं चलता। हम उसमें ही जन्मते हैं, उसमें ही बड़े होते हैं। यूरिन गागारिन जब लौटकर पृथ्वी पर आया तो लोगों ने उससे पूछा कि सबसे नया अनुभव क्या हुआ? उसने कहा, सबसे नया अनुभव हुआ ग्रेवीटेशन से मुक्त हो जाने का। शरीर निर्भार हो गया। समझ में नहीं पड़ा कि यही मेरा शरीर है और यह भी समझ में नहीं पड़ा कि इतना बोझ इस शरीर पर पृथ्वी पर था, इतना खिंचाव इस शरीर पर था! शरीर हल्का रूई की तरह हो गया, 'बाडीलेसनेस'। जैसे शरीर है ही नहीं, ऐसा अनुभव हुआ। हवा में जैसे ऊपर तैरने लगा शरीर।

यान की छत से लग गया जाकर। कोई वजन नहीं रहा। हाथ उठाये तो मालूम नहीं पड़े कि उठाये कि नहीं उठाये। सारा शरीर निर्भार हो गया। लेकिन हमारे शरीर पर कितना बोझ है वह हमें पता नहीं चलता; क्योंकि जमीन पर ही हम पैदा होते हैं, जमीन पर ही हम बड़े होते हैं, जमीन पर ही मर जाते हैं। हम बोझ लेकर ही पैदा होते हैं, लेकर ही मर जाते हैं; इसलिए पता नहीं चलता कि जमीन कितने जोर से हमें खींचे हुए है। वह, जिसको हम शरीर का वजन कहते हैं, शरीर का वजन नहीं है, जमीन की कशिश है। अगर दो सौ पौंड शरीर का वजन हो तो शरीर पर कोई वजन नहीं होता। यह जमीन खींच रही है इतनी ताकत से कि शरीर पर दो सौ पौंड का भार पड़ रहा है, लेकिन हम उसमें जीते हैं, हमें इसका कोई पता नहीं है। क्योंकि हम उसमें ही जन्मते हैं, उसमें ही आदत बन जाती है। ऐसे ही भविष्य का तो न मालूम और कितना बड़ा बोझ है, कितनी कशिश है--जमीन से भी ज्यादा, लेकिन हमें पता नहीं चलता। हम बचपन से ही कल में जीते हैं--आगे आगे आगे! और यह कल में जीने की जो हमारी मनोवैज्ञानिक भूल है यह समझ लेनी बहुत जरूरी है, तो शायद हम आनेवाले कल से मुक्त हो जायें। आनेवाले कल से मुक्त हो जाने का यह मत-लब नहीं है कि कल आपको कहीं जाना है तो आप उसकी कोई योजना नहीं करेंगे। उसका यह मतलब भी नहीं है कि कल सुबह ट्रेन पकड़ने का है, तो आज सुबह रिजर्वेशन नहीं करायेंगे। इसका यह मतलब भी नहीं है कि कल के लिए कोई जीवन की योजना, कोई प्लानिंग नहीं होगी। नहीं, क्रिमिनोलिकल टाइम तो है। समय तो है। लेकिन हमने एक मनोवैज्ञानिक समय को ईजाद किया हुआ है, जो कहीं भी नहीं है। जैसे एक आदमी क्रोधी है, हिंसक है और वह आदमी कहता है, कल, परसों, कुछ वर्षों बाद, अगले जन्म में, मैं अहिंसक हो जाऊंगा, शांत हो जाऊंगा। वह यह कहता है, हिंसक हूं, कोई फिक्र नहीं। लेकिन मैं चेष्टा करूंगा, श्रम करूंगा, साधना करूंगा, योग करूंगा, नीति का आचरण करूंगा, व्रत लूंगा--अहिंसक हो जाऊंगा। हिंसक है, लेकिन कल्पना करता है कि कल भविष्य में कभी अहिंसक हो जाऊंगा। यह समझने जैसा है। **जो आदमी हिंसक है वह कुछ भी योजना करे, वह कोई भी व्रत ले, वह कोई भी धारणा करे, वह कोई भी ध्यान करे, वह आदमी कोई भी योग करे, तप साधे, तपश्चर्या करे--हिंसक आदमी जो कुछ भी करेगा उससे कभी भी अहिं-सक नहीं हो सकता है, वह हिंसक ही रहेगा।**

व्रत भी हिंसक ही करेगा। उस व्रत के करने में भी उसकी हिंसा पूरी तरह मौजूद है। तपश्चर्या हिंसक ही करेगा, उस तप में भी उसकी हिंसा पूरी तरह मौजूद है। कल तक वह दूसरे के शरीरों को सताता था, अब वह अपने शरीर को सतायेगा। हिंसा पूरी तरह मौजूद है। कल तक वह रस लेता था किसी दूसरे की गर्दन दबाने में, अब वह अपनी ही गर्दन दबाने में रस लेगा। हिंसा मौजूद है। हिंसक जो कुछ भी करेगा उसमें हिंसा मजबूत होगी। वह कल अहिंसक नहीं होने वाला है, लेकिन आज की हिंसा भुलाने में सहारा मिलेगा उसे कल की अहिंसा की कल्पना से। सोचेगा, कल अहिंसक हो जाऊंगा, तो वह जो हिंसा की पीड़ा है वह, जो हिंसा का दंश है, वह जो हिंसा का कांटा चुभ रहा है, वह हल्का हो जायगा। वह कहेगा, फिक्र नहीं आज हिंसक हूं, कल अहिंसक हो जाऊंगा। वह कल की अहिंसा को सत्य मान लेगा, आज की हिंसा को झूठा कर लेगा। आज की हिंसा जारी रहेगी, वह कभी अहिंसक नहीं होगी। लेकिन कल अहिंसक हो जायगा इस भाव से हिंसा की जो पीड़ा होनी चाहिए वह कम हो जायगी, और हिंसा की पीड़ा जितनी ही कम हो जायगी, उतना ही हिंसा से मुक्त होना असंभव है। लेकिन वह कल की कल्पना करेगा। वह कहेगा, इस जन्म के बाद अगले जन्म में मैं भगवान को पा लूंगा। वह कहेगा, मृत्यु के बाद मोक्ष चला जाऊंगा। वह चलता रहेगा इस तरह भविष्य पर, और आज के तथ्य को नहीं देखेगा। इस बात को ठीक से जान लेना। जो भी आज के तथ्य को नहीं देखना चाहते हैं वे भविष्य की योजनाओं और कल्पनाओं में, अंधेरे में, धुएं में अपने को छिपा लेते हैं। आज का तथ्य ही सत्य है। उसे छिपाना नहीं है, उसे भुलाना भी नहीं है, उसे विस्मरण भी नहीं करना है। उसे पूरा जान लें; क्योंकि वह पूरी तरह जानने से ही बदलेगा। और बदलाहट का कोई उपाय नहीं, अगर चित्त में हिंसा है।

हिन्दुस्तान कितने हजारों साल से अहिंसा की बातें करता है, कितने हजारों साल से हमने अहिंसा के गीत गाये, अहिंसा के शास्त्र रचे हैं, अहिंसा की हम बात करते रहे हैं और एक भी आदमी अहिंसक नहीं है। इधर बीस, पच्चीस, चालीस सालों से तो हम बहुत ही अहिंसा की बातें कर रहे हैं, लेकिन जब खुद पर मुसीबत आती है, तो हम उतना ही हिंसक सिद्ध होते हैं जितना कोई और। चीन ने देश पर हमला किया, फिर हमारी अहिंसा खो गयी। पाकिस्तान के साथ मुठभेड़ है, हमारी अहिंसा खो जाती है। फिर कोई अहिंसा की बात नहीं करता। फिर हम कहते हैं अहिंसा की रक्षा के लिए हिंसा की

जरूरत है। अहिंसा की रक्षा के लिए भी हिंसा की जरूरत पड़ती है तो अहिंसा बहुत नपुंसक है। ऐसी अहिंसा का क्या मतलब जिसके लिए हिंसा द्वारा रक्षा की जरूरत पड़ती है और क्या अहिंसा की रक्षा हिंसा से की जा सकती है? अगर अहिंसा की रक्षा हिंसा से की जा सकती है तब तो फिर अमृत की सुरक्षा के लिए जहर का इन्तजाम करना पड़ेगा और प्रेम की रक्षा के लिए घृणा सीखनी पड़ेगी और जिन्दा रहने के लिए मरना पड़ेगा।

अहिंसा हमारी बातचीत है हजारों साल की और उससे सिर्फ एक बात घटी है कि हमने हिंसा को देखना बन्द कर दिया है। अहिंसा की बातों में हिंसा का तथ्य भूल गया है और हमें दिखायी नहीं पड़ता। चित्त अशांत है तो हम कहेंगे कल हम शांत हो जायेंगे। कुछ विधि का उपयोग करेंगे, किसी जाप का उपयोग करेंगे और कल हम शांत हो जायेंगे। अशांत आज हैं और कल होंगे शांत। फिर कल भी आ जायगा। कल तो आता नहीं, वह आज होगा और आप कहेंगे, आज अशांत हूं, कोई बात नहीं, कल शांत हो जायेंगे। यह पोस्टपोनमेंट सेल्फ डिसेप्शन है। यह स्थितिकरण आत्मवंचना है। कल पर छोड़ना और आज को देखने से बचना इतना बड़ा तनाव है कि फिर जिन्दगी में कभी परिवर्तन नहीं होगा। फिर तने ही रह जायेंगे, तनाव ही रह जायगा। पीछे लौटकर देखिये, जिन्दगी में कितनी बार सोचा होगा--कल यह कर लेंगे, कल वह कर लेंगे। वह कभी नहीं होगा, वह तरकीब तथ्यों को झुठलाने की है, उनको भुलाने की है, विस्मरण की है। वह तरकीब फार्गेटफुलनेस की है और किसी तथ्य को भुलाने से कभी उसको बदला नहीं जा सकता। अगर हिंसा बदलनी है, तो अहिंसा की बातचीत बन्द कर दें। हिंसा को देखें, वह जो अभी है उसे देखें, उसे पहचानें, उसे खोजें कि क्या है! और जितना उसे जानेंगे, जितना पहचानेंगे, जितना उसको देखने में समर्थ हो जायेंगे, वह हिंसा का तथ्य उतना ही बदलना शुरू हो जाएगा--अभी और यहीं, कल नहीं। अगर भीतर घृणा है, तो उसे देखें और पहचानें। और अगर भीतर चोरी बैठी है, तो उसे देखें और पहचानें। यह मत कहें कि कल मैं चोरी छोड़ दूंगा। अगर चोरी गलत बात है, तो कल की बात क्यों करते हैं? अभी सांप रास्ता काटता है, तो आप ऐसा नहीं कहते हैं कि कल मैं बच जाऊंगा। अभी छलांग लगाते हैं। क्योंकि सांप सामने खड़ा है फन फैलाये हुए, तो आप यह नहीं कहते--ठीक है, अभी खड़े रहो, सांप से कल हम बच जायंगे। कल हम छलांग लगा लेंगे। सांप सामने खड़ा होता है तो आप भी इसी वक्त छलांग लगाते हैं। क्यों? क्योंकि सांप दिखाई पड़ता, है। सांप के साथ मौत

दिखाई पड़ती है। सांप का जहर दिखाई पड़ता है। एक छलांग में आप बाहर हो जाते हैं। हिंसा सामने खड़ी है और आप कहते हैं कल हम अहिंसक हो जायेंगे। तो फिर आपको हिंसा का जहर दिखाई नहीं पड़ता। हिंसा की मौत दिखाई नहीं पड़ती, हिंसा का पागलपन दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए आप कहते हैं, कल। अभी क्या जल्दी है, कल। अभी घर में आग लगी है तब आप यह नहीं कहते हैं कि कल बाहर निकल जायेंगे। तब आप कहते हैं, अभी इसी क्षण मुझे बाहर निकलना है। आप यह कहते भी नहीं हैं कि इसी क्षण बाहर निकलना है--आप निकलना शुरू हो जाते हैं। आप निकल ही जाते हैं। जिन्दगी के तथ्य भी आग लगे होने से या सांप के तथ्यों से ज्यादा खतरनाक हैं। लेकिन कल की तरकीब से आप झुठला जाते हैं और उनको नहीं बदल पाते। जीवन की बदलाहट, जीवन की क्रान्ति, जीवन का रूपान्तरण इस क्षण होगा, अभी होगा। कल कभी नहीं होगा। लेकिन हमने एक आइडिया, एक विचार, एक प्रत्यय बनाया हुआ है कि कल हम अहिंसक हो जायेंगे और हम कल्पना कर लेते हैं कि कल हम अहिंसक हो जायेंगे। और आज की हिंसा मुड़ जाती है जो कि सत्य है। और कल की अहिंसा जो कि बिल्कुल झूठी है वह हमें सच मालूम लगने लगती है। हिंसा तो मौजूद रहती है और हम अहिंसक होने की कोशिश में लग जाते हैं। घृणा मौजूद रहती है और हम प्रेम करने की कोशिश में लग जाते हैं।

एक फकीर के पास किसी आदमी ने जाकर कहा कि आज मैं भी भीख मांगने आया हूं। मेरे भीतर बहुत घृणा है। मेरे भीतर बहुत हिंसा है और क्रोध है। मेरे भीतर बहुत ईर्ष्या है, बहुत जलन है। मैं कैसे इससे छुटकारा पाऊंगा? मुझे कुछ रास्ता बता दो। उस फकीर ने कहा, "कल जब मैं भोजन मांगने आऊंगा तेरे द्वार पर तभी रास्ता भी बता दूंगा।" वह फकीर दूसरे दिन फिर भोजन मांगने आया था। भिक्षा का पात्र उसने उस घर के सामने फैला दिया। उस आदमी ने आज बहुत स्वादिष्ट भोजन बनाया था। आज उस फकीर को भिक्षा और ही ढंग से देनी थी। आज उससे कुछ लेना भी था। उसने बहुत मिठाइयां बनाई थीं। वह बहुत फल लाया था। वह सारे फल और मिठाइयां लेकर भिक्षा के पात्र में डालने आया, तो देखकर हैरान हो गया कि भिक्षा के पात्र में तो कंकड़-पत्थर, गोबर पड़ा हुआ था। उसने हाथ रोक लिया और कहा, "महाशय भिक्षु जी, इस पात्र में मैं कैसे यह मिठाइयां डालूं?" उसने कहा, डाल दो, क्या हर्ज है? उसने कहा, सब खराब

हो जाएगा। यह पात्र तो गन्दा है।" तो क्या करूं ?" उस संन्यासी ने कहा। उस गृहस्थ ने कहा, "पहले पात्र को धो लो।" संन्यासी ने पात्र धो लिया। फिर मिठाई मिली। भिखारी वापस लौटने लगा तो गृहस्थ ने कहा, आपने कहा था, कुछ मुझे भी कहेंगे। उस संन्यासी ने कहा, मैंने कह दिया है। वह यह कि इस पात्र में गंदगी पड़ी है, इसमें तुम मिठाई डालने को तैयार नहीं हो। और भीतर हिंसा पड़ी है तो अहिंसा कैसे डाली जा सकती है? और भीतर क्रोध है तो क्षमा कैसे डाली जा सकती है? और तुम्हें यह दिखता है कि थोड़े से कंकड़-पत्थर-गोबर सब मिठाईयों को खराब कर देंगे; लेकिन तुम्हें यह नहीं दिखता कि तुम्हारे भीतर सब पड़ा है और तुम उसी में भगवान तक को डालने की कोशिश कर रहे हो। लोग आते हैं, पूछते हैं कि भगवान को कैसे पायें? वे यह कहते नहीं कि अपने पात्र को कैसे साफ करें? वे कहते हैं भगवान को कैसे पायें? वे कहते हैं प्रार्थना कैसे करें? वे यह नहीं कहते कि यह घृणा और यह क्रोध जो जीवन में मौजूद हैं उन्हें हम कैसे देखें ? और उन तथ्यों को पाना चाहते हैं जो कभी होंगे। वे कभी भी नहीं होंगे और मन एक खिचाव में पड़ जाएगा। क्रोध भीतर होगा और प्रार्थना की चेष्टा चलेगी। यह कितना असम्भव तनाव है। क्रोध करने वाला चित्त कैसे प्रार्थना कर सकता है? उसकी प्रार्थना में भी क्रोध की चेष्टा चलेगी। वह क्रोध से भरा रहेगा। घरों में देखिए जो प्रार्थना कर रहे हैं और चारों तरफ देख रहे हैं कि कब क्रोध का अवसर मिल जाय। वह पूजा भी कर रहे हैं और क्रोध की प्रतीक्षा भी कर रहे हैं कि कब क्रोध करें। पूजा और प्रार्थना करने वाले लोग अक्सर क्रोधी हो जाते हैं और इसका कारण अकारण नहीं। भीतर क्रोध है, ऊपर से प्रार्थना की कोशिश चल रही है। भीतर जो है वही सच है। ऊपर जो चल रहा है वह सच नहीं है। वह झूठ है। लेकिन भविष्य की आशा है कि कभी प्रार्थना पूरी हो जाएगी, कभी क्रोध खत्म हो जाएगा। क्रोध कभी खतम नहीं होगा। क्रोध को किसी प्रोसेस, किसी प्रतिक्रिया के द्वारा कभी खत्म नहीं किया जा सकता। क्रोध को, घृणा को, हिंसा को—जो भी हमारे भीतर गलत है उसको, कभी भी हम धीरे-धीरे दूर नहीं कर सकते। जिन्दगी में जो सब होते हैं वे क्रांति हैं। वे परिवर्तन नहीं हैं। अगर आपको अपने भीतर की हिंसा दिखाई पड़ जाय तो इसी क्षण एक जम्प, एक छलांग हो जाएगी; जैसे

सांप को देखकर हो जाती है। आप हिंसा के बाहर हो जाएंगे लेकिन यह कल कभी नहीं होगा। यह क्रमिक नहीं है, यह ग्रेजुअल नहीं है। यह ठीक से समझ लें कि जिन्दगी में जो भी होता है, वह क्रान्ति है, रिवोल्यूशन है। वह ग्रेजुअल डेथ नहीं है। वह ऐसा नहीं है कि धीरे-धीरे हम सब ठीक कर लेंगे। हम करेंगे धीरे-धीरे ठीक और जितनी देर आप ठीक करेंगे उतनी देर हिंसा मौजूद रहेगी। वह और मजबूत होती चली जाएगी। एक आदमी एक बीज बो देता है। बीज प्रति क्षण बड़ा हो रहा है। वह आदमी कहता है कि धीरे-धीरे इस वृक्ष को उखाड़कर फेंक देंगे और तब तक पानी भी डाल रहा है, तब तक खाद भी डाल रहा है, क्योंकि वह कहता है, धीरे-धीरे, बाद में, कभी हम इसे उखाड़कर फेंक देंगे। तब तक पानी भी डालेगा, खाद भी डालेगा। वह बीज बड़ा हो रहा है, वह अंकुर बड़ा हो रहा है, वह वृक्ष बड़ा हो रहा है, वह वृक्ष मजबूत होता चला जा रहा है। वह आदमी कहता है कि कभी आगे—कल, परसों हम इसे उखाड़कर फेंक देंगे और इस बीच वह पानी भी डाल रहा है और वृक्ष मजबूत होता चला जा रहा है, उसकी जड़ जमीन को पकड़ती चली जा रही है और वह कहता है कल, कल, फिर आगे। और इस देश में तो जहां हमें पुनर्जन्मों की बहुत लंबी बात बतायी गयी है, वहां हम कहते हैं अभी भी क्या जल्दी है, अगले जन्म में, उसके आगे!

हिन्दुस्तान के पास भविष्य की इतनी बड़ी योजना है जितनी दुनिया के किसी मुल्क के पास नहीं है। हमारे लिए समय की कमी ही नहीं है। हम कहते हैं अनंत-अनंत जन्म हैं, अनंत-अनंत आगे बीतेंगे। गलत नहीं कहते हैं हम। जिन्होंने कहा है उन्होंने जानकर कहा है; लेकिन जिन्होंने सुन लिया है उनके लिए घातक हुआ है और उनके लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ है, उनके लिए नुकसान पहुंचा है। तो उन्होंने कहा ठीक है, फिर क्या जल्दी है, फिर आज करने की जल्दी क्या है! अगर यह जन्म भी खो गया तो हर्ज क्या है। आगे और जन्म हैं। हिन्दुस्तान के पास भविष्य का सबसे लंबा विस्तार है और इसलिए हिंदुस्तान का वर्तमान सबसे ज्यादा निकृष्ट है और नीचा हो गया है। **भविष्य का इतना बड़ा विस्तार है कि उसकी वजह से वर्तमान को बदलने की जरूरत नहीं रहेगी। और ध्यान रहे, जो भी होना है वह अभी होना है, यहीं होना है, इसी क्षण होना है, क्योंकि जिन्दगी एक छलांग है।** जब हमें कोई चीज दिखायी पड़ती है, हम एकदम बदल जाते हैं।

फिर ऐसा नहीं होता कि हम धीरे-धीरे बदलेंगे। धीरे-धीरे बदलने की बात हमारे मोह को प्रकट करती है कि हम बदलना नहीं चाहते, इसलिए हम कहते हैं धीरे-धीरे बदलेंगे। और बदलना हम क्यों नहीं चाहते? क्योंकि हमने देखा ही नहीं है इस तथ्य को कि भीतर क्या है? अगर आपको पता चल जाय कि भीतर कैंसर है, तब आप यह नहीं कहते कि धीरे-धीरे। आप अभी भागते हैं, कहते हैं इसी वक्त कुछ करना पड़ेगा। लेकिन कैंसर कुछ भी नहीं है। हिंसा और भी बड़ा कैंसर है, क्रोध और भी बड़ा कैंसर है, घृणा और भी बड़ा कैंसर है। कैंसर सिर्फ शरीर को खाता है। घृणा, हिंसा और क्रोध तो पूरी तरह आत्मा को खा जाते हैं, लेकिन वे हमें दिखायी नहीं पड़ते। हमने कभी देखा ही नहीं है; हम उन्हें देखने से बचते हैं। जब भी देखने का मौका आ जाय हम इधर-उधर देखने लगते हैं। फिर हम किनारे देखने लगते हैं। सीधा नहीं देखते हैं। और हमने ऐसी तरकीबें निकाली हैं अपने को झुठलाने की, प्रवंचना की। अगर भीतर क्रोध ही हो तो हम कहते हैं कि यह क्रोध तो दूसरे को सुधारने के लिए है।

अगर भीतर हिंसा भी है, तो हम कहते हैं कि हिंसा नहीं होगी तो लोग समझेंगे कि हम कायर हैं, कमजोर हैं। अगर भीतर ईर्ष्या है तो हम कहेंगे कि भीतर ईर्ष्या नहीं होगी तो प्रतिस्पर्धा कैसे होगी? प्रतिस्पर्धा नहीं होगी तो विकास कैसे होगा? हम अपने भीतर के सब जहर, सब रोगों की सुरक्षा के लिए बहुत आयोजन किये हुये हैं, बहुत दलीलें इकट्ठी किये हुये हैं। हम अपने भीतर की सब बुराइयों की रक्षा करते हैं और फिर कहते हैं कि धीरे-धीरे बदलेंगे। यह धीरे-धीरे बदलना भी न बदलने की तैयारी है। जो आदमी कहता है कि धीरे-धीरे बदलेंगे वह नहीं बदलना चाहता है। उसे शायद पता भी नहीं है कि जो है भीतर, कितना रुग्ण, कितना बीमार, कितना कुरूप, कितना गंदा है! वह सब हमारे भीतर भरा हुआ है। लेकिन हम शास्त्रों को पढ़ लेते हैं कि भीतर तो परमात्मा का निवास है, भीतर तो आत्मा है। उस भीतर का हमें कोई पता ही नहीं है जहां आत्मा है और जहां परमात्मा है। अगर हम भीतर गये तो मिलेगी घृणा, आत्मा नहीं। अगर हम भीतर जाएंगे तो मिलेगा क्रोध, आत्मा नहीं। अगर हम भीतर जाएंगे तो मिलेगी ईर्ष्या, मिलेंगे सब तरह के जहर, धुवां—आत्मा नहीं। किताब में लिखा है कि आत्मा है भीतर। जब ये सब भीतर नहीं होंगे तब वह मिलेगा जो आत्मा है, जो परमात्मा है। लेकिन अभी तो जो है उसको

हम देखने से बचना चाहते हैं। हम कहते हैं देखने की क्या जरूरत है, धीरे-धीरे हम बदल लेंगे।

आत्मसाक्षात्कार का पहला कदम—अपने भीतर वह जो सब कुरूप है उसका साक्षात्कार है। जो कुरूप है भीतर उसका साक्षात्कार। और बड़े आश्चर्य की बात है कि जो उसे देख लेता है, जो भीतर है, उसी क्षण बदलाहट शुरू हो जाती है। एक क्षण रुकना नहीं पड़ता। देखा और बदलाहट शुरू हो जाती है। निरीक्षण की ओब्ज़र्वेशन की, देखने की अवेयरनेस इतनी बड़ी क्षमता है जिसका कोई हिसाब नहीं। क्रांति का एक सूत्र है, भीतर जो है उसके प्रति जाग जाना। लेकिन हम तो भविष्य के प्रति जागे हुए हैं, जो है उसके प्रति नहीं जागते हैं। हम चूके हुए हैं उस बिन्दु से जहां हम हैं, और भागेंगे वहां जहां हम नहीं हैं। भागते रहते हैं, भागते रहते हैं जहां नहीं हैं। और जहां हम हैं वहां हम आंख भी नहीं उठा के देखते कि कहां हम हैं, हम क्या हैं? जो अच्छे सिद्धांतों की बातें हैं वह हमें कंठस्थ हो गयी हैं, उनको हम दोहराये चले जाते हैं और हर चीज के लिए हमने जस्टीफिकेशन, हर चीज को न्याययुक्त ठहराने की व्यवस्था कर ली हैं। हम कहते हैं, हिंसा है, क्योंकि पिछले जन्म में बुरे काम किये थे इसलिए हिंसा बाकी रह गयी थी, वह तो भोगनी पड़ेगी। क्रोध है, क्योंकि पीछे जो किया था वह क्रोध पैदा कर गया है। जो हमारे भीतर है उसके लिए हम दलीलें खोजते हैं कि वह क्यों है? दलीलें खोजकर हम निश्चित हो जाते हैं। व्याख्या, एक्स्प्लेनेशन निश्चित कर देते हैं कि ठीक है, हमें पता चल गया है कि क्यों है और हम पूछते हैं कि इसे मिटायें कैसे? तो हमें विधियां बताने वाले लोग हैं। वे कहते हैं कि अगर क्रोध को मिटाना है तो क्षमा भाव ग्रहण करो, अगर सेक्स को मिटाना है तो ब्रह्मचर्य का व्रत लो, अगर हिंसा मिटानी है तो अहिंसा का पालन करो। इससे ज्यादा खतरनाक शिक्षा नहीं हो सकती है, नहीं है। यह सबसे ज्यादा खतरनाक बात है जिसने मनुष्य को पतित किया है। क्योंकि वह हिंसक को समझाते हैं कि तुम अहिंसा का भाव ग्रहण करो। अब हिंसक अहिंसा का भाव कैसे ग्रहण कर सकता है? यह नामुमकिन है, यह असंभावना है। हिंसक कैसे अहिंसक का भाव ग्रहण कर सकता है यह कभी आपने सोचा? क्रोधी कैसे क्षमा की धारणा कर सकता है यह कभी आपने सोचा? और कामी कैसे ब्रह्मचर्य का व्रत ले सकता है यह कभी आपने सोचा? हालांकि कामी ब्रह्मचर्य का व्रत लेते हैं और हिंसक अहिंसक का व्रत ग्रहण करते हैं और लोभी अलोभ की बात

करते हैं, आसक्त अनासक्त के भाव लेते हैं और हम कभी सोचते नहीं कि यह क्या हो रहा है? इससे सिर्फ तनाव पैदा होता है-- जो हो उसमें और जो होना चाहिए उसमें। वह तनाव मस्तिष्क की सारी शक्तियों को, प्राण की सारी ऊर्जा को नष्ट करता है, और कुछ भी नहीं करता है। हर आदमी तना हुआ है क्योंकि हर आदमी जो है उसे देखने को राजी नहीं और जो नहीं है वह होने की कोशिश कर रहा है। हर आदमी तना हुआ है क्योंकि वह जो है उसे देखता नहीं और जो नहीं है वह होने की चेष्टा में संलग्न है। फिर तनाव पैदा नहीं होगा क्या? इसी तनाव में मनुष्य की सारी शक्ति क्षीण हो जाती है। फिर मनुष्य शक्ति का एक अम्बार नहीं रह जाता, फिर उसके पास कुछ भी शक्ति नहीं होती। एक दुष्परिणाम और घटित होता है जब वह बार-बार सोचता है कि यह हो जाऊं, वह जाऊं और बार-बार पाता है कि नहीं हो सकता, तब आत्म-विश्वास क्षीण होता चला जाता है।

मैं कलकत्ता था। एक बहुत अद्भुत वृद्ध आदमी, जो चल बसे, उनसे मैं बात कर रहा था। उन्होंने खड़े होकर सभा में यह कहा कि मैंने अपनी जिन्दगी में चार बार ब्रह्मचर्य का व्रत लिया। सुनने वालों ने सोचा, बहुत गजब का काम किया, चार बार जीवन में व्रत लिया! लेकिन वह बूढ़ा हंसने लगा और उसने कहा, अच्छी तरह समझ लो कि मैंने चार बार व्रत लिया और पांचवी बार नहीं लिया तो यह मत समझना कि व्रत पूरा हो गया। पांचवीं बार नहीं लिया, इसलिए, क्योंकि समझ में आ गया कि व्रत पूरा नहीं हो सकता। और चार बार व्रत के असफल होने से जो आत्मग्लानि पैदा हुई वह अलग, जो आत्महीनता पैदा हुई वह अलग, जो अपने पर विश्वास खो गया कि मैं कुछ कर सकता हूं वह अलग। दुनिया में नियम और व्रत देने वाले लोगों ने मनुष्य की आत्मा को हीन ग्लानि से भर दिया है। एक-एक आदमी की आत्मा ग्लानि से भर गयी है। उसे लगता है कि इससे कुछ नहीं हो सकता क्योंकि कितनी बार व्रत लिया और कुछ भी नहीं होता है, बस हर बार हार जाते हैं और हारने की धारणा मजबूत हो जाती है। हिंसा नहीं छूटती, सेक्स नहीं छूटता। लेकिन सेक्स नहीं छूट सकता है क्योंकि व्रत लेने वाले को बार-बार व्रत लेने से स्पष्ट हो जाता है, और तब वह सोचता है कि महावीर का छूट गया होगा तो वह तीर्थंकर थे। और कृष्ण का छूट गया होगा तो वे भगवान के अवतार थे। हम साधारण आदमी हैं, यह हमारे वश की बात नहीं है। फिर वह सोचता है, पिछले जन्मों के दुष्कर्म होंगे, उसके कारण नहीं छूटता। फिर वह सोचता

है कि भविष्य में कोशिश करते रहेंगे, करते रहेंगे तो तो जन्मों-जन्मों में छूटन वाली चीज है, धीरे-धीरे छूट जायेगी। इस तरह आदमी जैसा है वैसा ही रह जाता है और उसके जीवन में कोई क्रांति नहीं हो पाती।

नहीं, सब छूट सकता है इसी क्षण, लेकिन कल कभी नहीं छूट सकता। फिर क्या करें? तो पहली बात है, कि कल को छोड़ने की धारणा से छुटकारा चाहिए। यह ख्याल ही भूल जाए कि कल कुछ हो सकता है। क्योंकि आप अभी हैं, समय अभी है, घृणा अभी है। कल की बात क्यों करते हैं? और कल भी आप होंगे, यही घृणा होगी, यही समय होगा। फिर कल क्या करेंगे? क्या कुछ नया हो जाने वाला है कल ? आज से कल आप और कमजोर होंगे और आज से कल घृणा और मजबूत होगी, क्योंकि एक दिन घृणा ने और यात्रा कर ली होगी और एक दिन घृणा ने आपको और कमजोर कर दिया होगा। कल आप कमजोर होंगे, आपका क्रोध कल और भी मजबूत होगा, क्योंकि कल तक क्रोध ने और यात्रा कर ली होगी और जड़ें फैला दी होंगी। कल तक क्रोध कई बार हो चुका होगा। फिर आप कहें कि आगे कल करूंगा तो यह यात्रा जारी रहेगी। मरते वक्त आप क्रोधी मरेंगे, कामी मरेंगे, हिंसक मरेंगे। फिर आप सोचेंगे, अगले जन्म में होगा। अगले जन्म में आप और कमजोर हो जायेंगे। भविष्य आपको मजबूत नहीं करता है, भविष्य आपको कमजोर करता चला जायेगा, क्योंकि जिन चीजों से आप कमजोर हो रहे हैं उनकी यात्रा जारी रहेगी। अगर टूटना है कुछ, तो आज टूटेगा, कल नहीं। अगर बदलना है कुछ तो अभी, कल नहीं। लेकिन बदलने की चेष्टा में कुछ नहीं बदला जाता है क्योंकि बदलने की चेष्टा आप करते हैं—आप जो कि हिंसक हैं, क्रोधी हैं, कैसे अहिंसक हो जाइएगा! फिर क्या किया जा सकता है? तो मैं कह रहा हूं कि जागा जा सकता है। जो स्थिति है अभी, यहीं, उसके प्रति पूरी तरह जागा जा सकता है। क्या है मेरे भीतर? एक-एक पल, रोयां-रोयां अहंकार से भरा हुआ है। उठना, बैठना अहंकार से भरा हुआ है। आंख के इशारे में घृणा है— चलते होते हैं, हिंसा है, घृणा है। जिन्दगी की पूरी-पूरी व्यवस्था में वह सब छिपा है जो कभी-कभी प्रकट होता है। हम सोचते हैं, कभी-कभी मुझे क्रोध आता है। ऐसी भूल में मत पड़ना। क्रोध सदा रहता है, कभी-कभी नहीं प्रकट होता। जो नहीं है वह प्रकट कैसे हो जायगा? एक बिजली के तार में बिजली दौड़ रही है, बटन दबाते हैं तो बल्ब जल जाता है, बटन नहीं दबाते तो बल्ब बुझा रहता है, लेकिन बिजली दौड़ रही है।

ार
ार
तो
ार
भी
है।
ा।
को
पूरे
भी
या
ीर
ा-
हो
एक
ार
का
ा।
हीं
ारे

की
हैं
हम
कि

ीर
कि
यी
था
की

मौन, निर्विचार-मात्र साक्षीभाव हूँ!

जीवन सतत प्रवाह है- आगे... और आगे... और आगे... वह पीछे लौट कर कभी नहीं देखता!

यहां जन्म भी है, मौत भी है और दोनों एक साथ हैं। यहां फूल भी है, कांटा भी है और बिलकुल एक साथ हैं। जिंदगी निरंतर विरोध पर निर्भर है। जिस दिन हम जन्म और मृत्यु दोनों को एक साथ स्वीकार कर पायेंगे उस दिन जिन्दगी का रस कुछ और ही हो जायगा।

मैं प्रचारक नहीं हूँ, नहीं कोई उपदेशक हूं। मैं तो लोगों को उनकी मूर्च्छा से झकझोरना चाहता हूँ।

मेरी कोई चर्या नहीं है- बस, मैं जैसा हूं वैसा हूं। जो चल रहा है वह चल रहा है। सोता हूँ तो सोता हूं। खाता हूं तो खाता हूं।

गेलीलिओ ने मनुष्य के अहंकार को पहली चोट पहुंचाई जब उसने कहा- सूरज पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता पृथ्वी ही सूरज का चक्कर लगा रही है।

दूसरी चोट डार्विन ने पहुंचाई जब उसने कहा कि तुम ईश्वर-पुत्र नहीं हो- बेटे हो बंदर के!

तीसरा धक्का फ्रायड ने दिया जब उसने कहा कि समाज, सभ्यता, संस्कृति महान चीजें नहीं एक लम्बा रोग है।

अपने अस्तित्व के प्रति जागो।

है ि
चीज
है अ
न
फिर
छुटक
क्योंि
और
क्या
आज
कर
आप
क्रोध
बार
जारी
फिर
हो
करत
उनक
अगर
नहीं
हिंस
है ?
उसके
रोया
आंख
पूरी
हैं,
है,
बिज
है,

बटन दबाइएगा कभी, तो बल्ब जलेगा —— बिजली अगर दौड़ती होगी। अगर नहीं दौड़ती होगी तो बल्ब क्या जलेगा, बटन कोई कितना ही दबाये। अगर मुझे आकर कोई गाली दे गया और भीतर क्रोध की करेंट दौड़ रही है, तो क्रोध निकलेगा। अन्यथा वह देता रहे गाली, बटन दबाता रहे। भीतर अगर करेंट दौड़ रही है तो बल्ब जल जायेगा। लेकिन हम सोचेंगे कि कभी-कभी क्रोध होता है। कभी-कभी क्रोध नहीं होता है। क्रोध प्रतिपल पूरे वक्त है। घृणा कभी-कभी नहीं होती, वह मौजूद है, वह बिल्कुल मौजूद है पूरे वक्त। हिंसा पूरे क्षण मौजूद है। हम हिंसा ही हैं, क्रोध ही हैं, घृणा ही हैं और इसको जानना पड़ेगा, इसको पहचानना पड़ेगा, इसको भीतर खोजना पड़ेगा, इसके पूरे के पूरे दर्शन करने पड़ेंगे और यह दर्शन तो अभी करने पड़ेंगे; क्योंकि हम भी मौजूद हैं, वह सब भी मौजूद है जिसका दर्शन करना है। तो कल का क्या सवाल है, खोजो अपने भीतर और अपने को पूरा देखो कि यह मैं हूं और जैसे ही यह दिखायी पड़ जाय कि यह मैं हूं, आप हैरान हो जायेंगे कि बदलाहट शुरू हो गयी। वह आपको करनी नहीं पड़ेगी। वह बदलाहट वैसे ही हो जाती है जैसे सांप रास्ते पर खड़ा है और आप छलांग लगा जाते हैं। एक क्षण भी नहीं लगता छलांग लगाने में। सोचना भी नहीं पड़ता। अपने भीतर भी नहीं सोचना पड़ता कि मैं बचूं। छलांग हो जाती है। अगर घृणा का पूरा तथ्य दिखायी पड़ जाय, आप उसी क्षण घृणा के बाहर हो जायेंगे, उसी वक्त। न कोई पिछला जन्म रोकेगा, न पिछला कर्म रोकेगा। कोई रोकने वाला नहीं है। लेकिन दर्शन हो जाय तथ्य का, नग्न तथ्य का। वह जो नैतिक तथ्य है हमारे भीतर जिन्दगी का वह दिख जाय, छलांग हो जाती है।

यह पहली बात मैंने कही, अतीत का बोझ छोड़ दें और भविष्य की मानसिक योजना कि मैं यह हो जाऊंगा, मैं वह हो जाऊंगा। नहीं, जो हम हैं उसे जानना है, जो मैं हूं उसे जानना बहुत कष्टपूर्ण है, नहीं तो हम भविष्य की योजना ही नहीं करते। बहुत कष्टपूर्ण है, जो हूं उसे जानना, क्योंकि वह बहुत कुरूप है। वह बहुत कुरूप है जो मैं हूं।

मैंने सुना है एक स्त्री थी, वह कभी दर्पण के सामने नहीं आती और अगर कोई उसके सामने दर्पण ले आये तो वह दर्पण तोड़ डालती थी; क्योंकि वह कहती थी कि दर्पण बड़े गंदे हैं। इन दर्पणों के कारण मैं कुरूप दिखायी पड़ने लगती हूं। वह कुरूप थी। लेकिन जबतक दर्पण सामने नहीं आता था तबतक तो कुरूपता नहीं थी, तबतक वह सुंदर थी, क्योंकि तबतक कल्पना की

बात थी। दर्पण सामने उसे बताता था कि वह क्या है। दर्पण सामने नहीं होता था, तो वह सुंदर थी, वह अपनी कोई कल्पना में थी, फिर कोई देखने का तो सवाल नहीं था। तो वह दर्पण देखती ही नहीं थी, वह दर्पण तोड़ डालती थी और वह मानती थी कि दर्पण के कारण मैं कुरूप होती चली जाती हूं, क्योंकि जबतक दर्पण नहीं होता है मैं सुंदर होती हूं। वह औरत पागल रही होगी। लेकिन हम सब भी वैसे ही पागल हैं। हम सब भी उसे देखने से बचते हैं, जो हम हैं। और उसे देखने से बचने के लिए हमने भी कल्पना में एक इमेज बना रखी है। हर आदमी ने अपनी प्रतिमा बना रखी है कि मैं यह हूं। वह प्रतिमा बिल्कुल झूठी है, वह प्रतिमा वही नहीं है जो हम हैं। उसे छिपाने के लिए हमने प्रतिमा बना रखी है कि हम यह ह।

हर आदमी अपने को कुछ और समझता है जो वह है। और आप इसे सोचेंगे तो यह बहुत साफ दिखायी पड़ जायगा कि जो मैं हूं वह मैं कभी नहीं हूं। कभी स्वीकार नहीं करता कि मैं यह हूं। बल्कि लड़ता हूं अगर कोई स्वीकार कराने के लिए मजबूर करे। झगड़ा करूंगा, लडूंगा, अपनी प्रतिमा को बचाने की कोशिश करूंगा कि मैं यही हूं। लेकिन ध्यान रहे, ये सारी प्रतिमाएं मेरे व्यक्तित्व को रूपांतरित होने से रोकेंगी। ये क्रांति में नहीं जाने देंगी, ये बदलने नहीं देंगी। एक नये आदमी का भीतर जन्म नहीं हो सकेगा, क्योंकि मैंने एक झूठी प्रतिमा बना रखी है। तो मैं उसी प्रतिमा को मानकर जीता रहूंगा और जो मैं हूं वह मैं कुछ और ही हूं उसका मुझे पता भी नहीं चलेगा। हम भूल नहीं गये हैं। हमने इतना भीतर दबाया हुआ है कि हम पहचान भी नहीं पाते कि हम क्या हैं? फिर हम नये-नये वस्त्रों में, नये-नये मुखौटों में, नई-नई ऊपर से ओढ़कर ओढ़नियां छिपा लेते हैं जो हम हैं, लेकिन हम जो नहीं हैं इसका दर्शन कठिन है। मेरी दृष्टि में स्वयं की जो स्थिति है उसको देखने से बड़ी और कोई तपश्चर्या नहीं। धूप में खड़ा होना बहुत आसान है, भूखा बैठ जाना भी बहुत आसान है और अगर भूखे रहने की आदत डाल ली जाय तब तो खाना भी खाना कहीं ज्यादा कठिन है, भूखा रहना ही फिर ज्यादा आसान है। नग्न खड़ा हो जाना भी बहुत आसाने है। ये सब थोड़ी सी बातें हैं जो कोई भी कर सकता है। इससे तपश्चर्या का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। अपनी तपश्चर्या मैं जैसा हूं उसे जानने से शुरू हो, क्योंकि असली कष्ट वहीं से शुरू होते हैं -- जैसा मैं हूं। हम सब समझते हैं कि हम सत्य बोलते हैं और हम सब अगर कोई झूठ बोलता हो तो उसकी भारी निन्दा करते हैं, और

हम हैरान होते हैं कि इतना अच्छा आदमी इतनी छोटी-सी बात पर झूठ बोल गया। लेकिन हम कभी नहीं सोचते कि हमारा सारा व्यक्तित्व झूठ से खड़ा हुआ है। हम चौबीस घंटे झूठ बोलते हैं। झूठ न केवल बोल रहे हैं, झूठ जी रहे हैं और यहां तक हालत पहुंच गयी है कि हमें पता भी नहीं हो सकता है कि हम झूठ बोल रहे हैं।

मेरे एक अध्यापक थे। मैंने कई बार ऐसा अनुभव किया कि किसी भी किताब का नाम लिया जाय और वह जरूर कहते थे कि मैंने पढ़ी है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई किताब ऐसी हो जो उन्होंने न पढ़ी हो। फिर मुझे शक हुआ। मैं एक दिन गया और मैंने एक ऐसी किताब का नाम लिया जो है ही नहीं और वह बोले -- मैंने पढ़ी है, यह तो मैंने कोई पन्द्रह-बीस साल पहले पढ़ी है। अब उसका मुझे ख्याल नहीं है, लेकिन किताब मैंने पढ़ी है। थोड़ी-सी बात थी, उनको झूठ बोलने से फायदा भी न था, लेकिन शायद उन्हें पता भी नहीं, शायद उन्हें ख्याल भी नहीं कि वह क्या कह रहे हैं! आदत का हिस्सा हो गया है, सहज बोल रहे हैं, उन्हें कहीं ख्याल भी नहीं है कि यह जो मैं बोल रहा हूं उसका क्या प्रयोजन है! एक आदमी झूठ बोलता हो, कुछ लाभ होता हो, तो भी समझ में आता है। हम ऐसे भी झूठ चौबीस घंटे बोल रहे हैं जिनसे कोई लाभ भी नहीं। लेकिन हमारा व्यक्तित्व ही, जिसको कहें- झूठ हो गया है, वह झूठ बोल रहा है, बोलता चला जा रहा है। यह जो ऐसा झूठ है इसे पहचानेंगे तो मन को बड़ी पीड़ा होगी। वह जो हमने अपनी सत्य बोलने वाली प्रतिमा बना रखी है एकदम खण्ड-खण्ड होकर नीचे गिर जायेगी, गिर जानी चाहिए। वह, जिसको भी सत्य की खोज है, जिसको भी जान लेना है कि क्या है गहरे से गहरा जीवन का सत्य? जिसको पहचान लेना है उसे जिसे परमात्मा कहें, जिसे मुक्त हो जाना है -- उसे सबसे पहले अपनी झूठी प्रतिमा को तोड़ना पड़ेगा। अपने हाथों से अपनी ही मूर्ति का भंजन करना होगा।

कितनी हिंसा है ख्याल ही न रहा। हम सोचते हैं कि शायद हिंसा का मतलब यह है कि किसी आदमी की छाती में छुरा मार दो तो हिंसा हो गयी। शब्द भी छुरे मार सकते हैं। आंख का इशारा छुरे मार सकता है। जब आप अपने नौकर को देखते हैं तब आपने ख्याल किया, कि वह क्या आंख वही होती है जब आप अपने मित्र को देखते हैं। मित्र को जब आप देखते हैं तो आंख वही नहीं होती है। जब आप नौकर

को देखते हैं तो आंख दूसरी होती है। लेकिन वह बहुत सूक्ष्म हिंसा है। वह हमें ख्याल में भी नहीं आती। हम सोचते हैं, पानी छान के पी लेते हैं, हम अहिंसक हो गये। हम सोचते हैं, हम रात खाना नहीं खाते, अहिंसक हो गये। हम सोचते हैं, हम मांसाहार नहीं करते, हम अहिंसक हो गये। ठीक है। हिंसा इतनी ही होती, तो ठीक था। हिंसा बहुत गहरी है, हिंसा बहुत-बहुत रोम-रोम में समा गयी है। आदमी चलता है तो पता चल सकता है कि आदमी हिंसक है कि नहीं। उसकी चाल में हिंसा हो सकती है, उसके उठने-बैठने में हिंसा हो सकती है, उसके माथे के बलों में हिंसा हो सकती है, और उसे पता भी नहीं होगा। वह सब उसमें जीते-जीते इतना पक गया है कि उसे पता भी नहीं चलेगा कि वह किस तरह की हिंसाएं कर रहा है। उसके हंसने में भी हिंसा हो सकती है। वह किसी का व्यंग्य कर सकता है और व्यंग्य करने में हिंसा हो सकती है। वह मजाक कर सकता है और मजाक में हिंसा हो सकती है। अगर भीतर हिंसक चित्त है तो हम जो भी करेंगे उसमें हिंसा होगी। यह भी हो सकता है, वह आदमी सारी दुनिया से छूटकर भाग जाय, वह जंगल में अकेला बैठ जाय, तो भी हिंसा जारी रहेगी। हिंसा हमारे व्यक्तित्व के भीतर का सवाल है। वह हमारे भीतर केमिस्ट्री का सवाल है और उसको पहचानना पड़ेगा —— हम उठते-बैठते, बात करते, चलते, सोते हिंसक तो नहीं हैं? महावीर एक ही करवट सोते थे। बुद्ध एक ही करवट सोते थे। आनंद—उनका भिक्षु वर्षों तक उनके साथ सोया था। वह बहुत हैरान हुआ कि वे रात में करवट क्यों नहीं बदलते। एक दिन आनंद ने बुद्ध को पूछा कि बड़े आश्चर्य की बात है कि आप रात भर करवट क्यों नहीं बदलते? मैंने कल पूरी रात जागकर देखा कि आप करवट बदलते हैं कि नहीं; पर आपने जहां हाथ रखा, जहां पैर रखा, फिर आप रात भर वैसे ही सोते रहे। बुद्ध ने कहा —— अकारण करवट बदलने में हिंसा हो सकती है। कोई कीड़ा-मकोड़ा आ गया हो, पीछे विश्राम करता हो, रात के अंधेरे में करवट बदलूं अकारण, क्या जरूरत है? जीवन में एक बार करवट बदली थी और तब ख्याल आया कि बिना करवट बदले भी सोना हो सकता है, तो क्यों बदलूं? तो आनंद ने पूछा —— क्या होश से सोते हैं पूरी रात? क्योंकि हमसे तो करवट बदल जाती है, हम बदलते थोड़े ही हैं। बुद्ध ने कहा —— होश से नहीं, मन जितना शांत हो जाता है उतना करवट बदलना कम हो जाता है। आप हैरान होंगे, मन जितना अशांत होगा, रात उतनी करवट ज्यादा बदली जायेगी। वह जो करवट बदलना है, वायलेंस

का हिस्सा है। एक अशांत आदमी बैठेगा तो बैठा टांगें हिलाता रहेगा। कोई पूछे कि ये टांगें किस लिए हिल रही हैं? यह क्या हो गया है टांगों को? कुर्सी पर बैठे हैं लोग, टांगें क्यों हिलती हैं? भीतर वायलेंस है, वह वायलेंस कंपा रही है, वह टांगों को हिला रही है। अभी टांगों के हिलने से वायलेंस हो सकती है, हिंसा हो सकती है तो किसी की छाती में छुरा मारके ही पता नहीं चलता। वह तो हमारे पूरे व्यक्तित्व की अंतर्धारा पहचाननी पड़ेगी कि ये पैर क्यों हिल रहे हैं अकारण? जैसे जैसे आदमी शांत होगा, उसका शरीर भी शांत होता चला जायेगा, उसके कंपन कम हो जायेंगे; क्योंकि कंपन भीतर की हिंसा से पैदा होती है। यह व्यक्तित्व की एक-एक पर्त को उघाड़कर देखना होगा। जैसा व्यक्तित्व है उसे पहचानना होगा। रास्ते पर आप जा रहे हैं, दो आदमी लड़ रहे हैं। आप खड़े होकर देख रहे हैं। आपने कभी भी नहीं सोचा होगा कि यह हिंसा है। दो आदमी लड़ रहे हैं, आप खड़े होकर क्यों देख रहे हैं? आपको खड़े होकर देखने में रस आ रहा है कि नहीं। और अगर झगड़े ऐसे ही खत्म हो जायं, बिना मार-पीट हुए, तो आप थोड़ा-सा दुखी होकर लौटेंगे कि नहीं कि व्यर्थ ही खड़े रहे, कुछ परिणाम निकला नहीं। और अगर तेजी से झगड़ा हो जाय, और लहू बह जाय, छुरेबाजी हो जाय, तो आप थोड़े से हल्के होकर लौटेंगे। मन थोड़ा निश्चिंत हो गया होगा। ऐसा लगेगा कि कुछ हुआ, कुछ देखा।

आखिर ये फिल्में जिनमें डिटेक्टिव, खूनी और हत्यारों की कहानियां होती हैं क्यों ज्यादा देखी जाती हैं? ये हिंसक फिल्म के कारण है। जितना दुनिया में हिंसक चित्त बढ़ता चला जायगा उतनी हिंसक फिल्म, हिंसक-कथाएं रस देंगी । क्यों? क्योंकि हिंसक-कथा देखते-देखते आप भूल जाते हैं कि आप कथा के हिस्से नहीं हैं। आप कथा के हिस्से हो जाते हैं। अगर आप एक जासूसी फिल्म देख रहे हैं, तो आप भूल जाते हैं कि आप किसके साथ आइडेंटिटी हो जाते हैं। नायक के साथ आप एक हो जाते हैं। आप देखेंगे कि जब नायक घोड़े पर भागा जा रहा है तेजी से, तो आप भी कुर्सी पर अकड़कर बैठ गये हैं। आप क्यों अकड़कर बैठ गये हैं? यह आपकी रीढ़ में क्या हो गया है? यह आकस्मिक नहीं है, यह भीतर की हिंसा है। आप भी किसी घोड़े पर बैठकर इसी तरह, इसी गति से यात्रा करना चाहते हैं, किसी की छाती में इसी तरह भाला भोंकना चाहते हैं, यद्यपि भोंक नहीं सके हैं आप.तो कहानी को देखकर रस ले रहे हैं, तृप्त हो रहे हैं। स्पेन में भैंसों के साथ आदमियों को लड़ाया जाता है। लाखों लोग देखने इकट्ठे होते हैं। भरी धूप है, आग बरस

रही है और वे बैठे हुए हैं कि एक आदमी भैंसे से लड़ रहा है और भैंसे के सींग उसकी छाती में घुस गये हैं और लाखों लोग उत्सुकता और आतुरता से उसके गिरते हुए खून को देख रहे हैं। उनको क्या हो गया है? इन आदमियों को क्या हो गया है? कुश्ती देखने हजारों-लाखों लोग इकट्ठे होते हैं। क्यों, किसलिए? भीतर की हिंसा को रस मिलता है। यह रस पहचानना पड़ेगा तो हमें अपनी प्रतिमा का पता चलेगा कि प्रतिमा कैसी है, यह हम कैसे आदमी हैं, यह हमारे भीतर क्या हो रहा है? जो अखबार हत्याओं की, आत्म-हत्याओं की, स्त्रियों को भगाने की जितनी ही खबरें छापता है वह उतना ही ज्यादा बिकता है। कौन पढ़ता है? जो लोग पढ़ते हैं उनके भीतर की किसी हिंसा को, किसी बात को रस उपलब्ध होता है। वह इसको पढ़कर सुखी होते हैं, कहीं उन्हें कुछ आनंद आता है। यह आनन्द हिंसक है और इसे पहचानना पड़ेगा। और यह तथ्य है कि और किसी भविष्य में आप अहिंसक नहीं हो जाने वाले हैं। इन तथ्यों को आज और यहीं देखना पड़ेगा।

गांधी जी के आश्रम में एक दिन सुबह रामायण की कथा पढ़ी जाती थी और एक प्रकरण आया। एक बहुत अद्भुत प्रसंग आया कि सीता को रावण चुरा कर ले गया है, तो सीता अपने हाथ के, पैर के, अपने गले के जो आभूषण थे वह फेंकती गयीं ताकि पीछे राम खोजने आयें तो उन्हें रास्ते का पता हो सके कि सीता किस रास्ते से ले जायी गयी है। राम आये और उन्हें वे आभूषण मिल गये। लेकिन राम तो आभूषण नहीं पहचान सके। तब उन्होंने लक्ष्मण को कहा कि ये आभूषण तुझे पहचान में आते होंगे कि ये सीता के ही हैं; क्योंकि मैं तो कभी देख ही नहीं पाया तो कभी ख्याल ही नहीं किया। तो लक्ष्मण ने कहा कि मैं सिर्फ पैर के आभूषण पहचान सकता हूं, क्योंकि मैंने पैर के ऊपर कभी आंख उठाकर नहीं देखा। तो गांधी जी ने कहा, "यह बड़ी हैरानी की बात है कि लक्ष्मण इतने दिन साथ था, तीनों थे –– राम थे, सीता थी, लक्ष्मण था। तीनों वर्षों जंगल में साथ हैं और लक्ष्मण ने कभी आंख उठाकर नहीं देखा! यह बड़ी हैरानी की बात है। इसका क्या मतलब?" तो विनोबा ने कहा, "इसका मतलब है कि लक्ष्मण ब्रह्मचारी था और ऊपर आंख उठाकर उसने कभी नहीं देखा। उसने सिर्फ पैर ही देखे हैं।" गांधी जी तृप्त हुए और उन्होंने कहा, विनोबा की व्याख्या अद्भुत है और बिल्कुल सही है। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि विनोबा की व्याख्या एकदम गलत है और अगर यह व्याख्या सही है तो लक्ष्मण एकदम व्यभिचारी चित्त का आदमी था, क्योंकि

लक्ष्मण सीता को भी देखने में डरे, यह ब्रह्मचर्य का सबूत नहीं हो सकता। यह व्यभिचारी चित्त का सबूत तो हो सकता है। लक्ष्मण ब्रह्मचर्य की स्थिति में हो, तो सीता को देखने में या न देखने में क्या फर्क पड़ता है! और ऐसे नजर नीचे रखना पड़े पैर ही पैर पर वर्षों तक और नजर ऊपर जाने में डर लगे, रोकनी पड़े और नियम रखने पड़ें कि नजर पैर पर ही रखनी है, यह बहुत घबराये हुए चित्त का लक्षण है। विनोबा ने लक्ष्मण की जो प्रशंसा की इससे बड़ी कोई निन्दा नहीं हो सकती। लेकिन गांधी को विनोबा की बात जंची। वह जंची उनको इसलिए नहीं कि वह बात सही है, वह जंची इसलिए कि उनके ब्रह्मचर्य की धारणा यही है।

यह ब्रह्मचारी नहीं, यह अब्रह्मचारी चित्त का लक्षण है, यह हमें पहचानना पड़ेगा, यह हमें अपने भीतर खोज करनी पड़ेगी। किसी स्त्री के चेहरे को हम इसलिए नहीं देख सकते हैं कि भीतर काम है, वासना है और किसी स्त्री के चेहरे को देखने से हम आंख इसलिए भी बचा सकते हैं कि भीतर काम है और वासना है। अगर भीतर काम और वासना नहीं हैं तो न चेहरे को देखने की कोई विशेष चेष्टा होती है, न नहीं देखने की कोई विशेष चेष्टा होती है। देखने की, या न देखने की विशेष चेष्टा भीतर के काम का सबूत है। सहज आप वृक्ष को देख लेते हैं, ऊपर भी देखते हैं, नीचे भी देखते हैं। अगर वृक्ष सुंदर होता है तो आप कहते हैं बहुत सुंदर है, तब कोई नहीं कहता है कि यह आदमी कामी है। फूल है, खिला है। आप देख लेते हैं, अपने रास्ते पर बढ़ जाते हैं और कहते हैं बहुत सुंदर है। तब कोई नहीं कहता है यह आदमी कामी है। और अगर एक स्त्री का चेहरा बहुत सुंदर है और देखते हैं, फिर आगे बढ़ जाते हैं और कहते हैं कि बहुत सुंदर है -- तो लोग कहेंगे कि यह आदमी कामी है।

यह आश्चर्यजनक बात है। अगर एक पुरुष का चेहरा सुंदर है और एक स्त्री खड़ी होकर देखती है और कहती है सुंदर है, तो हम कहेंगे कि यह स्त्री कामी है। अगर सरलता जीवन में हो तो जैसे फूल सुंदर है, जैसे चांद सुंदर है वैसे आदमी के चेहरे भी सुंदर होते हैं। और जिस दिन दुनिया अच्छी होगी और भली होगी उस दिन हम किसी अजनबी को रास्ते पर रोककर कह सकेंगे कि बहुत सुंदर आंखें हैं तुम्हारी, बहुत आनंद हुआ। लेकिन आज अगर किसी को ऐसा रोककर कहें तो झगड़ा भी हो सकता है; क्योंकि चित्त कामुक है। अगर किसी स्त्री को रोककर कहें कि बहुत सुंदर आंखें हैं, बहुत खुश हुआ,

तो झंझट हो जायेगी; क्योंकि स्त्री पूछेगी, तुम मेरे कौन हो —— पति हो, बेटे हो? पहले यह सिद्ध करो। अगर कोई भी नहीं हो, तो तुमने अजनबी, राह चलते मेरी आंखों के सौंदर्य की बात कैसे की? ब्रह्मचारी को पैर पर नजर रखनी चाहिए, तो तुमने आंखें देखीं ही कैसे? लेकिन हमें पता नहीं है कि पूरी सभ्यता कामुक है, हमारे सारे प्रतिमान कामुकता के हैं और हम पहचान भी नहीं पाते। और जब हम इस तरह की व्याख्याएं कर लेते हैं तो कामुकता को जानना मुश्किल हो जाता है। नहीं, भीतर एक-एक पर्त उघाड़कर देखनी पड़ेगी कि मैं जो कर रहा हूं, जो सोच रहा हूं, जो जी रहा हूं —— वह क्या है? अपनी नग्नता में वह सीधा और सच्चा है। वह सीधा और सच्चा जो है, अगर देखा जा सके, तो उससे तत्क्षण छुटकारा हो सकता है।

धर्म क्रांति है, धर्म विकास नहीं है। लेकिन क्रांति होती है तथ्य में, दर्पण में। इसलिए आज मैंने आपसे यह कहा, मत सोचें कि कल आप ऐसे हो जायेंगे। आज क्या हैं, उसे देखें। भविष्य के तनाव को बिल्कुल छोड़ दें। वह 'बिकमिंग' का ख्याल कि मैं यह हो जाऊंगा बिल्कुल छोड़ दें, और जो हैं उसे जानें। और आश्चर्य की घटना घटती है कि जो है उसे जानते ही जो गलत है वह विसर्जित हो जाता है, जो श्रेष्ठ है वह प्रकट हो जाता है। **जो है उसे जानते ही और भीतर और भीतर प्रवेश शुरू हो जाता है, क्योंकि निकृष्ट गिरने लगता है, व्यर्थ गिरने लगता है, कुरूप विसर्जित होने लगता है, सुंदर खिलने लगता है, शिव प्रकट होने लगता है, सत्य की निकटता बढ़ जाती है और एक दिन वह जो वस्तुतः हम हैं भीतर, वह प्रकट हो जाता है।** एक दिन से मेरा मतलब कल से नहीं, एक दिन से मेरा मतलब अभी, यहीं, इसी क्षण। जितनी तीव्रता होगी तथ्य को जानने की, सत्य के हम उतने ही निकट पहुंच जाते हैं। लेकिन हमारे मन की जो आदत है वह कहेगी——आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, हम इसका प्रयोग करेंगे। बस बात खत्म हो गयी, सब व्यर्थ हो गया। आपका मन कह रहा होगा कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, यही करेंगे। करेंगे नहीं——करना है, अभी, आज, यहीं। सारा जोर मेरा इस क्षण पर है; क्योंकि इस क्षण के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं। जो होगा, इस क्षण में ही हो सकता है, नहीं करना हो तो फिर कल के क्षण की बात सोची जा सकती है। न करना हो तो सोचना चाहिए – कल करेंगे। जो भी न करना हो उसे कल पर छोड़ देना चाहिए। जो भी करना हो उसे अभी करना होगा।

अगर हम अतीत के बोझ और भविष्य की योजना से मुक्त हो जायं तो

जीवन बदल जाता है। ऐसा जीवन, जिस पर अतीत का बोझ नहीं, भविष्य का तनाव नहीं — ऐसे जीवन को मैं भागवत जीवन, डिव्हाइन लाइफ कहता हूं। ऐसा जीवन भगवान को उपलब्ध हो जाता है। यह जो मैंने कहा, इसे आप इसी तरह मत सोचना कि मैं जो कह रहा हूं वह ठीक है या गलत, वह किसी किताब में लिखा है कि नहीं लिखा है। इसे आप इस तरह से मत सोचना, क्योंकि इस तरह सोचने से कोई भी अर्थ, प्रयोजन नहीं है। इसे आप इस तरह सोचना कि जो मैंने कहा है वह आपके भीतर सही है या गलत। इस तरह मत सोचना, जैसा मैंने गांधी की बात कही, विनोबा की बात कही। न मुझे गांधी से कोई मतलब, न विनोबा से। इस तरह मत सोचना कि गांधी ने ऐसा क्यों कहा? कहा कि नहीं कहा, या दूसरी बात कही, या विनोबा का कुछ और मतलब रहा होगा। सवाल यह है कि जब आप किसी स्त्री के पैर पर ही आंख रखें और ऊपर आंख उठाने की हिम्मत न पड़े तो खोज करनी है कि बात क्या है? मैं डरा हुआ क्यों हूं? यह आंख मैं सरलता से क्यों नहीं उठाता? उससे संबंध है। जब रास्ते पर रुक जायं आप, किसी को लड़ते देखें, तो उस वक्त देखना कि क्या चित्त कोई प्रसन्नता अनुभव कर रहा है? चित्त चाहता है कि झगड़ा हो जाय? अपने ऊपर खोजना, अपने ऊपर देखना तो जो मैं कह रहा हूं उसका कोई परिणाम हो सकता है और क्रांति हो सकती है।

★

ग्राहकों से निवेदन

यदि आपका '**ज्योतिशिखा**' का चंदा पूरा हो गया है तो आप एक वर्ष का चंदा (मार्च १९७० से दिसंबर १९७० तक का) ५ रुपये तुरंत भेजने की कृपा करें।

जीवन जागृति केंद्र, ५३ एम्पायर बिल्डिंग, १४६ दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई १

संकलन : झव्हेर बहन

मैं का बोझ
अहंकार का बोझ
जब तक चित्त पर है
तब तक हम
सत्य में प्रवेश नहीं पा सकते

अ|हं|का|र

जीवन में दो भ्रम हैं। दोनों ही बहुत सत्य मालूम होते हैं। एक भ्रम तो पदार्थ का है, मैटर का और दूसरा भ्रम अहंकार का है, 'इगो' का। एक भ्रम बाहर है, एक भ्रम भीतर है। दोनों भ्रम एक साथ ही जीते हैं और एक साथ ही मरते हैं। वे एक ही भ्रम के दो छोर हैं। पदार्थ दिखायी पड़ता है और ख्याल में भी नहीं आता कि ऐसा भी हो सकता है कि पदार्थ न हो। बहुत ठोस मालूम होता है पदार्थ।

बहुत बड़ा विचारक जांसन एक दिन बर्कले के साथ घूमने निकला था और बर्कले कहता था कि बाहर जो भी दिखायी पड़ता है सब भ्रम है। तो जांसन ने पत्थर उठाकर बर्कले के पैर पर पटक दिया। बर्कले पैर पकड़ कर बैठ गया है। बहुत चोट लग गयी है, खून बहने लगा है। जांसन ने कहा, क्या यह पत्थर भ्रम है जिससे चोट लगी और खून बहता है? शायद जांसन ने सोचा होगा कि उसने बहुत बड़ी दलील दे दी है पत्थर के पक्ष में। लेकिन पत्थर भ्रम है। अब तो विज्ञान कहता है कि मैटर है ही नहीं, पदार्थ नहीं है।

बहुत पहले कुछ लोगों ने कहा था, पदार्थ माया है। तब हंसी योग्य बात मालूम हुई होगी। पदार्थ और माया? पदार्थ ही तो सत्य है। जो दिखायी पड़ता है वही तो सत्य है। और शौक से हम कहते हैं जो दिखायी पड़ता है वही तो

सत्य है, जो दिखायी नहीं पड़ता वह सत्य कैसे हो सकता है? अब विज्ञान कहता है कि जो दिखायी पड़ता है वह बिल्कुल सत्य नहीं है। पदार्थ है उसका ठोसपन। उसका होना असत्य है। लेकिन कैसे हम मानें? पदार्थ पैर पर गिरता है तो चोट लगती है, दीवाल से निकलने की कोशिश करें तो सिर टूट जाता है। इस दीवाल को असत्य कहें, न मानें, जिससे सिर टूट जाता हो! सिर जरूर टूट जाता है फिर भी दीवाल जैसी दिखायी पड़ती है वैसी नहीं है। हमें जो दिखायी पड़ रहा है बाहर का जगत--यह वृक्ष, आकाश में सूरज, यह पृथ्वी, यह पत्थर, यह चारों तरफ जो फैलाव है उस फैलाव में हमें दिखायी पड़ता है एक ठोसपन, एक पदार्थ, एक मैटीरियल। लेकिन जैसे गहरी खोज की गयी और पदार्थ तोड़ा गया तो पता चला वहां कुछ ऊर्जा है, इनर्जी है, शक्ति है--पदार्थ नहीं है। पदार्थ अणुओं का जोड़ है और अणु पदार्थ नहीं है। पदार्थ परमाणुओं का संग्रह है और परमाणु केवल ऊर्जा के कण हैं, शक्ति के कण हैं। पदार्थ दिखायी कैसे पड़ता है? पदार्थ दिखायी पड़ता है ऊर्जा के आने की तीव्र गति से, स्पीड से। एक पंखा है, इसमें तीन पंखुड़ियां हैं। पंखा रुका हुआ है तो तीन पंखुड़ियां दिखायी पड़ती हैं। पंखा तेज चलता है तब पंखुड़ियां तीन नहीं दिखायी पड़ती हैं, सिर्फ बीच की खाली जगह दिखायी पड़ती है, फिर पूरा घूमता हुआ वृत्त मालूम होता है। अगर बहुत तेज चले पंखा तो हमें दिखायी पड़ेगा कि केवल एक गोल घेरा घूम रहा है जो कि नहीं है। बीच की खाली जगह दिखनी बन्द हो जायगी। पदार्थ के जो अणु हैं, ऊर्जा के जो अणु हैं वे इतनी तीव्र गति से घूम रहे हैं कि उनके तीव्र गति से घूमने के कारण ठोस होने का भ्रम पैदा हो रहा है। उनके बीच की खाली जगह दिखायी नहीं पड़ती। खाली जगह ठोस हो जाती है। वे इतनी तेजी से घूम रहे हैं, उनकी गति बहुत तीव्र है, उतनी ही जितनी सूरज की किरणों की गति है। सूरज की किरणें एक सेकेंड में एक लाख ८६ हजार मील चलती हैं। एक सेकेंड में एक लाख ८६ हजार मील की सीधी गति है सूरज की किरणों की। और जो अणु छोटी सी जगह में उसी गति से घूमते हैं वे एक सेकेंड में कितने चक्कर लगा लेते होंगे? एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड की गति से। और अणु इतने छोटे हैं कि अगर हम अपने बाल के किनारे परमाणुओं को खड़ा करें तो एक बाल की मोटाई में एक लाख परमाणु सीधे खड़े हो जायेंगे। इतने छोटे परमाणु हैं, इतनी छोटी उनकी परिधि है घूमने की, और परिधि के घूमने की गति एक लाख छियासी हजार मील प्रति

सेकेंड है इसलिए ठोस दिखायी पड़ती हैं चीजें। कोई चीज ठोस नहीं है। सब पदार्थ बिल्कुल भ्रम हैं।

एक भ्रम बाहर है और दूसरा इसी भ्रम का छोर भीतर है। भीतर दिखायी पड़ता है कि मैं है, इगो है। यह मैं हूं, बिल्कुल झूठा है, यह मैं भी एकदम माया है, यह मैं भी एकदम इलूजन है। लेकिन आप कहेंगे पदार्थ ऊर्जा का परिभ्रमण है लेकिन यह मैं कैसे झूठा है? क्या मेरा जन्म नहीं हुआ? मैं बच्चा नहीं था? मैंने शिक्षा नहीं ली? बड़ा नहीं हुआ? मैं आज जवान नहीं हूं? मैं कभी बीमार पड़ता हूं, कभी स्वस्थ होता हूं? फिर अगर मैं नहीं हूं तो यह सब कहां होता है? किस पर होता है? ये सारे अनुभव किस पर गुजरते हैं? मैं हूं, मेरी प्रतिष्ठा है, मेरा मान है, मेरा सम्मान है, मेरा ज्ञान है, मेरा त्याग है, फिर भी मैं नहीं हूं? अगर नहीं हूं तो फिर सब मिट गया। एक मैं के भीतर भी अगर हम प्रवेश करें, जैसे वैज्ञानिक ने परमाणु के भीतर प्रवेश किया, पदार्थ के भीतर देखा और कहा, पदार्थ नहीं है। ऐसे ही अगर कोई व्यक्ति मैं के भीतर प्रवेश करेगा और मैं के परमाणुओं को जानेगा तो उसे पता चलेगा कि मैं भी एक भ्रम है। मैं के परमाणु सब हैं। जैसे पदार्थ के परमाणु हैं-- ऊर्जा के कण, वैसे मैं के परमाणु हैं--अनुभव के कण। ये अनुभव के कण इकट्ठे हो रहे हैं और तेजी से घूम रहे हैं। इनकी गति के कारण यह शक पैदा होता है, यह लगता है कि मैं हूं। जैसे कोई एक मशाल जला ले और तेजी से मशाल को घुमाए तो एक फायर सर्किल बन जायगा। दिखायी पड़ने लगेगा एक अग्नि का गोल घेरा, जो है नहीं कहीं भी। सिर्फ एक मशाल घूम रहा है और एक वृत्त बन रहा है। मशाल नहीं दिखेगा, सिर्फ एक वृत्त दिखायी पड़ेगा। मशाल बुझ जाय तो दिखायी पड़ेगा वृत्त झूठा था, वह फायर सर्किल झूठा था, वह अग्नि वृत्त नहीं था, सिर्फ एक मशाल तेजी से घूमता है। जब कोई व्यक्ति भीतर प्रवेश करेगा तो पता चलेगा उसके अनुभव के कण, स्मृति के कण, जो हो चुके हैं उनके कण इतनी तेजी से घूम रहे हैं कि इन तेजी से घूमते हुए कणों के कारण एक सर्किल पैदा होता है, एक वृत्त पैदा होता है, इगो सर्किल पैदा होता है और लगता है कि मैं हूं। यह मैं हूं लगता है इसलिए कि हम कहते हैं मेरा जन्म हुआ। लेकिन सच बात यह है कि मेरा जन्म नहीं हुआ। जन्म होने की सिर्फ क्रिया हुई, बड़े होने की क्रिया हुई, बीमारी आयी। लेकिन हम प्रत्येक घटना के साथ जोड़ते हैं कि मैं बीमार हुआ, मुझे भूख लगी, मैं स्वस्थ हुआ, मैं गया। लेकिन हम

एक-एक अनुभव के भीतर प्रवेश करें तो पता चलेगा कि घटनाएं घटीं। लेकिन हमारी सारी भाषा भ्रांत है। हम कहते हैं आकाश में बिजली चमकी। भाषा से ऐसी भूल पैदा होती है कि बिजली कोई अलग चीज है और चमकना कोई अलग चीज है। बिजली चमकी। हम कहते हैं बिजली है, जो चमकी। लेकिन वैज्ञानिक कहेगा बिजली चमकी यह गलत है। चमकने का नाम बिजली है। बिजली कभी नहीं चमकी। जो चमकी है उसी को ही हम बिजली कहते हैं। चमकना और बिजली एक ही चीज के दो नाम हैं। दो चीजें नहीं हैं कि बिजली कहीं अलग है और चमकना कहीं अलग है। आप कहते हैं कि मैं गया। अगर भीतर प्रवेश करेंगे तो पायेंगे जाना हुआ है। मैं नहीं गया हूं। मैं और जाना एक ही चीज के दो नाम हैं, लेकिन हमारी भाषा कहती है कि मैं गया। हम कहते हैं मुझे प्यास लगी। सच बात यह है कि प्यास लगी और प्यास लगते वक्त मैं और प्यास दो चीजें नहीं थे। मैं ही प्यास था, लेकिन भाषा दो में बांट देती है। वह कहती है, मुझे दुख हो रहा है। अगर हम बहुत गौर से देखेंगे तो सिर्फ दुख हो रहा है। मुझे दुख हो रहा है यह नहीं है। लेकिन भाषा दो हिस्से में तोड़ देती है। भाषा कहती है मुझे दुख हो रहा है। भाषा का जो हमारा मजमून है उसमें 'मैं' निमज्जित होता चला जाता है। मैं कहीं भी नहीं हूं; लेकिन यह निर्माण बचपन से लेकर जीवन भर चलता है और एक 'मैं' का इलूजन, एक असत्य धीरे-धीरे पुंजीभूत हो जाता है, खड़ा हो जाता है, ठोस हो जाता है। इसी ठोस 'मैं' का बोझ हमारे ऊपर सर्वाधिक है।

मैंने दो बोझों की बात की है आपसे, अतीत का बोझ और भविष्य का बोझ। और अंतिम बोझ 'मैं' का बोझ, अहंकार का बोझ है। यह अहंकार का बोझ जब तक चित्त पर है तबतक हम सत्य में प्रवेश नहीं पा सकते; क्योंकि यह है असत्य, यह है झूठा। कभी अपने भीतर प्रवेश करें। अब हमारी सारी भाषा गड़बड़ है। जब हम करेंगे प्रवेश अपने भीतर तो तो पायेंगे कि वह मैं मजबूत हो रहा है। भीतर से भी मैं मजबूत हो रहा है और लगता है भीतर मैं हूं या मैं नहीं हूं। सच्चाई यह है कि बाहर और भीतर दोनों सब झूठा है। ऐसी दो चीजें नहीं हैं कि कुछ बाहर और कुछ भीतर। एक ही चीज फैलती है बाहर और भीतर। बाहर और भीतर दो चीजें नहीं हैं। बाहर और भीतर एक ही चीज का फैलाव है, एक ही चीज का एक्सटैंशन है। वही भीतर है, वही बाहर है। लेकिन हमारे देखने में ऐसा लगता है कि भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और है। हम कहते हैं

बाहर कुछ भी नहीं है, भीतर सब कुछ है। हम कहते हैं बाहर छोड़ो, भीतर जाओ। उस सब से मैं मजबूत होता है। लेकिन बहुत गौर से देखें, क्या है बाहर, क्या है भीतर? कोई भी चीज भीतर है, कोई भी चीज बाहर है। सांस भीतर है कि बाहर? सांस बाहर भी जाती है और भीतर भी। सांस कहां है? सांस बाहर — भीतर का जोड़ है, सेतु है। यह सूरज तुमसे बाहर है या भीतर? सूरज की गर्मी हमें भीतर पूरे वक्त मिल रही है, हम इसी से जी रहे हैं। सूरज बाहर हो या भीतर, सूरज मेरा हिस्सा है, न कि मुझसे अलग है। अगर सूरज बुझ जाय तो मैं भी बुझ जाऊंगा कि नहीं बुझ जाऊंगा? अगर सूरज बुझ जाय, हम सब यहीं बुझ जायेंगे। तो फिर सूरज बाहर था या भीतर था? यह वृक्ष बाहर है कि भीतर? हम कहेंगे कि वृक्ष हमसे बाहर है। वृक्ष बाहर दिखायी पड़ रहे हैं। दिखायी पड़ रहे हैं यह सच है; लेकिन कभी आपने ख्याल किया, गेहूं आप कहां से ले आये? वृक्षों से। भोजन कहां से ले आये? वृक्षों से। वृक्ष पूरे वक्त आपके लिए भोजन तैयार कर रहे हैं। पौधे पूरे वक्त आपके लिए भोजन तैयार कर रहे हैं। आप मिट्टी नहीं खा सकते हैं लेकिन गेहूं बो देते हैं। गेहूं मिट्टी खाता है। पौधा बड़ा होता है, एक गेहूं की जगह हजार गेहूं लग जाते हैं। वह सब मिट्टी से आया है उस गेहूं में। उस गेहूं ने सूरज की किरणें पी ली हैं, उस गेहूं में वह सारी प्रक्रिया हो गयी कि अब उस प्रक्रिया के द्वारा गेहूं आपके शरीर का हिस्सा बन सकता है। अब यह गेहूं आपके भीतर जायगा, आपका खून बनेगा, आपकी हड्डी बनेगी, आपका मांस बनेगा। अगर सारे पौधे भोजन बनाने बन्द कर दें तो आप एक क्षण भी जियेंगे? आप इसी क्षण विदा हो जायेंगे। तो पौधे आपके बाहर हैं या भीतर या उसी जीवन की बड़ी प्रक्रिया का हिस्सा हैं? वही जीवन की प्रक्रिया एक तरफ गेहूं पैदा कर रही है और एक तरफ आपको पैदा कर रही है। फिर वही गेहूं आपको पोषण दे रहा है। और कल आप फिर गिर जायेंगे और मिट्टी में मिल जायेंगे। तो मिट्टी और आप अलग अलग हैं? उसी मिट्टी में पैदा होते हैं, उसी मिट्टी में विदा हो जाते हैं, उसी मिट्टी से जीते हैं, फिर वही मिट्टी बन जाते हैं। कितनी बार पौधे बन चुके है आप, और कितनी बार पौधे आदमी बन चुके हैं और कितनी बार आदमी फिर मिट्टी बन चुका है, फिर पौधा बन चुका। यह किसी एक ही वृत्त के हिस्से हैं या अलग अलग? क्या है बाहर, क्या है भीतर? जो बाहर है वह प्रतिक्षण भीतर जा रहा है, जो भीतर है वह प्रतिक्षण बाहर जा रहा है। बाहर-भीतर एक ही जीवन ऊर्जा की लहरें हैं।

जब भीतर की तरफ लहर आती है तो हम कहते हैं मैं, और जब बाहर की तरफ जाती है तो हम कहते हैं तू। लेकिन तू और मैं एक ही जीवन ऊर्जा की लहर के दो छोर हैं, यह दिखायी पड़ना जरूरी है। यह मेरा भ्रम है, यह भीतर का भाव ही भ्रम है और जबतक यह दिखायी न पड़ जाय तबतक बोझ से मुक्ति नहीं हो सकती क्योंकि जबतक मैं मानता हूं कि मैं हूं पृथक, तबतक एक बोझ रहेगा क्योंकि तबतक एक संघर्ष रहेगा उससे जो मैं नहीं है। मैं का संघर्ष है न-मैं से, आई का संघर्ष है नाट आई से। जबतक मैं मैं हूं, तू तू है तबतक संघर्ष जारी रहेगा। जबतक अलग है, मैं अलग हूं तबतक एक अंतर्द्वन्द्व जारी रहेगा। वह अंतर्द्वन्द्व ही मनुष्य के ऊपर सबसे बड़ा बोझ है क्योंकि संघर्ष में शांति कहां, द्वन्द्व में शांति कहां। हम लड़ रहे हैं प्रतिक्षण, सबसे लड़ रहे हैं, चारों तरफ लड़ रहे हैं और लड़ने का यह बिल्कुल भ्रम है कि मैं अलग हूं। अगर यह ज्ञात हो जाय कि मैं अलग नहीं हूं, मैं इसी विराट जीवन प्रक्रिया का एक अंग हूं तो किससे है लड़ना, किससे है संघर्ष, कौन है शत्रु? यह सारा विराट जीवन एक है। ऐसा ही समझें कि अगर मेरे हाथ को ख्याल पैदा हो जाय कि मैं अलग हूं और मेरी आंख को ख्याल पैदा हो जाय कि मैं अलग हूं और आंख लड़ने लगे हाथ से, पेट लड़ने लगे सिर से, हाथ लड़ने लगे पैर से, तो क्या गति होगी उस व्यक्ति की? सारा विघटित हो जायगा, सारा व्यक्तित्व अंतर्द्वन्द्व और संघर्ष में नष्ट हो जायगा। सारा व्यक्तित्व एक कलह बन जायगा फिर जीवन आनन्द नहीं हो सकता। लेकिन नहीं, आंख जुड़ी हुई है पैर से, हाथ जुड़ा हुआ है सिर से, पेट जुड़ा है, सिर्फ जुड़ा है और सबके भीतर एक सहयोग, एक कोआपरेशन, एक अंतरसंबंध है, एक कनेक्शन है। भीतर सब एक है। आंख और पैर का अंगूठा अलग अलग नहीं, दोनों एक ही जीवन प्रक्रिया के हिस्से हैं। गौर से देखगें, समझेंगे, पहचानेंगे, तो हमको समस्त जीवन एक ही प्रक्रिया मालूम होगा।

जिस दिन ऐसा मालूम होता है कि समस्त जीवन एक ही प्रक्रिया है उसी दिन ईश्वर का अनुभव हो जाता है। ईश्वर का और कोई अर्थ नहीं है। ईश्वर का अर्थ है सब एक है, ईश्वर का अर्थ है अनेक नहीं है, ईश्वरका अर्थ है खंड-खंड नहीं है, सब अखंड है और यह अखंड इकट्ठा जीवन है।

हमने उस अखंड से अपने को अलग तोड़ा हुआ है और भक्त भी कहता है, मैं अलग हूं। भक्त कहता है, हे भगवान, मुझपर दया करना। वह कहता है कि मैं अलग हूं। ईश्वर दया करने वाला है, मैं दया पाने वाला हूं। तू पतित पावन है, मैं पतित हूं। भक्त भी कहता कि मेरा उद्धार करना। किससे कह रहे हो?

किससे मांग रहे हो? तुम जिससे भीख मांग रहे हो, वही हो। वहां कोई भी नहीं है और सुनने को। क्योंकि मांगने वाला ही पाने वाला है, देने वाला ही लेने वाला है। वहां दो नहीं हैं। लेकिन सारे भक्त हाथ जोड़े खड़े हैं। किसके सामने? और मैं कहता हूं सारे भक्त नास्तिक हैं। किसी भक्त को ईश्वर का कोई पता नहीं है। किससे हाथ जोड़ रहे हो? हाथ जोड़ने का मतलब है कि कोई दूसरा है और जहां दूसरा है वहीं सब उपद्रव शुरू हो गया है। वहीं हमने तौल लिया है अपने को। किससे कर रहे हो प्रार्थना? किसके चरणों में हाथ जोड़ के सिर टेक रहे हो? कौन है वहां दूसरा? कोई भी नहीं है। जीवन एक अंतहीन विस्तार है एक ही ऊर्जा का,एक ही जीवन शक्ति का। लेकिन भक्त भी कहता है कि भगवान अलग है, भगवान को पाने की मैं कोशिश कर रहा हूं। भगवान को पाने की कोशिश भ्रम है। भ्रम इसलिए है कि भगवान को पाने की कोशिश में यह निर्णय हुआ कि मैं हूं और मैं भगवान को पाऊंगा। नहीं, धर्म नहीं मानता, नहीं जानता ऐसा कि कोई और है। धर्म का ज्ञान, धर्म का जानना यह है कि मैं नहीं हूं और तब सब एक हो जाता है। फिर किसे करनी है प्रार्थना? फिर अपने ही हाथ को अपने ही सिर पर जोड़े हुए हैं अपने ही पैर पर अपने ही सिर को रखे हुए हैं! सारी प्रार्थना, सारी पूजा, सारी अर्चना एक गंभीर मूढ़तापूर्ण है, क्योंकि किससे कर रहे हैं यह? वह जो मौलिक भ्रम है, वह जो मौलिक इलूजन है वह कायम है कि दूसरा अलग है और मैं अलग हूं। भीतर यह जो छोर है बाहर का, उसमें प्रवेश करके खोजें–मैं हूं? जायें और खोजें कि मैं हूं? और एक एक जगह पूछें कि मैं यह हूं, मैं शरीर हूं। हम कहेंगे साधक पू छते हैं। साधक पू छते हैं, मैं शरीर हूं? और उसका उत्तर तैयार है कि मैं शरीर नहीं हूं। वह उत्तर कहीं से आता नहीं, वह किताब से पढ़ा हुआ है। उत्तर पहले से मालूम है, पूछता है पीछे से। पूछता झूठा है। उत्तर पहले से मालूम है, पूछता पीछे है। पूछना झूठा है। उत्तर पहले से मालूम है जैसे कि बच्चे नकल करते हैं। गणित करने के पहले किताबें उठाकर देखे लेते हैं कि उत्तर क्या है। उत्तर पहले से मालूम है, फिर गणित कर रहे हैं। ऐसा धार्मिक लोग भी करते हैं। उत्तर पहले से पता है कि हम आत्मा हैं फिर अपने से पूछ रहे हैं कि मैं शरीर हूं? और फिर खुद ही कह रहे हैं कि मैं शरीर नहीं हूं। क्या पागलपन है? किससे पूछ रहे हो, किसको उत्तर दे रहे हो? और जब पूछना ही शुरू किया है तो अंत तक पूछो, फिर इतना जल्दी मत रुक जाओ। फिर पूछो कि मैं शरीर हूं? और उत्तर किताब से निकलता है क्यों कि किताब से आया हुआ उत्तर आपके लिए झूठा होगा। किसी के लिए सत्य होगा जिसे मिला था।

आपको किताब से मिला है। आपको नहीं आया है आप से। पूछा है, शरीर हूं ? पूछो मैं मन हूं ? लेकिन यहीं मत रुक जाओ। रुक जाता है जो, वह पूछता ही नहीं। और यह भी पूछो, मैं आत्मा हूं ? और हर जगह उत्तर मिलेगा, नहीं। शरीर पर भी मिलेगा, मन पर भी मिलेगा, आत्मा पर भी मिलेगा। असल में जो हम पूछ सकते हैं वही उत्तर मिलेगा––यह मैं नहीं हूं। पूछते चले जाओ, खोजते चले जाओ और अंत में पाओगे कि मैं हूं ही नहीं। उत्तर मिलेगा ही नहीं। अंततः पता चलेगा मैं हूं ही नहीं, सब है, मैं नहीं हूं। जैसे कोई प्याज को चीरना शुरू करे, एक पर्त निकाल ले। पूछे अब प्याज कहां है? यह पर्त तो प्याज नहीं है, फेंक दो। दूसरी पर्त निकाल लें। दूसरी पर्त प्याज नहीं है–और प्याज और प्याज और खोजता चला जाय और एक एक पर्त को फेंकता चला जाय। आखिर में क्या मिलेगा ? आखिर में शून्य मिलेगा और पता चलेगा प्याज ही नहीं, सब पर्त ही पर्त थी। ऐसे ही अगर कोई खोजता चला जाय तो पर्त ही पर्त मिलेगी और मैं कहीं भी नहीं मिलेगा। अंततः सब पर्तें शांत हो जायेंगी और मैं का भाव भी शांत हो जायगा। लेकिन जहां मैं शांत हो जाता है वहां मैं तो नहीं मिलता है, बाकी सब मिल जाता है। पूछो, मैं कौन हूं ? और आखिर मैं पता चले मैं हूं ही नहीं और तब जिसका पता चलेगा वही है। उसका ही नाम सत्य है, उसी का नाम परमात्मा है। लेकिन जो कहता है 'मैं आत्मा हूं' वह परमात्मा को कभी नहीं जान पाता, क्योंकि वह यह मानकर चल रहा है कि मैं हूं। वह जिसको हम आत्मवादी कहते हैं वह भी परमात्मवादी नहीं है क्योंकि आत्मवादी कहता है मैं हूं और यह जिद्द उसकी कायम है कि मैं अलग हूं। वह कहता है कि मुझे मोक्ष चाहिए और वह कहता है कि मोक्ष में भी मैं रहूंगा। सब छोड़ने को राजी हो जाता है आत्मवादी लेकिन मैं को छोड़ने को राजी नहीं है। वह कहता है धन मैं छोड़ दूंगा, वह कहता है पत्नी-बच्चे मैं छोड़ दूंगा, वह कहता है संसार छोड़ दूँगा, मर जाऊंगा लेकिन वह यह कहता है कि मैं 'मैं' को नहीं छोड़ूंगा। मैं को मैं रखूंगा। मैं मोक्ष में रहूंगा। मैं आनन्द को, मोक्ष को अनुभव करूंगा। लेकिन मैं ? मैं बचूंगा। लेकिन बड़े मजे की बात है, असली संपत्ति मैं है, धन असली संपत्ति नहीं है और धन में जो मजा है वह मैं के मजबूत होने का मजा है और कोई मजा नहीं है। मेरे पास कुछ है इसका जो मजा है वह उसके मैं को मजबूत करने का मजा है। आपके पास एक बड़ा मकान है, तो उसी अनुपात में आपके पास एक बड़ा मैं होगा। छोटा मकान है, मैं छोटा हो जायगा। छोटे मकान से तकलीफ नहीं होती, तकलीफ मैं के छोटे हो जाने से होती है। अगर आप एक बड़ी कुर्सी पर सवार हैं तो आपके पास एक बड़ा मैं है। कुर्सी से नीचे

उतरे कि मैं छोटा हो गया। तकलीफ कुर्सी से नहीं होती है। बड़े तख्त पर बैठने से कौन सा सुख मिलता होगा? लेकिन बड़े तख्त पर बैठने से मैं बड़ा हो जाता है। वह मैं बिल्कुल काल्पनिक है, बड़े तख्त का सहारा लेकर बड़ा हो जाता है। बड़े धन का सहारा लेकर बड़ा हो जाता है। बड़े पद का सहारा लेकर बड़ा होता है और हम कहते हैं पद छोड़ दो, धन छोड़ दो; लेकिन वह मैं बहुत होशियार है। वह छोड़ने से भी बड़ा हो जाता है। वह कहता है, मैंने धन छोड़ दिया, देखो मैंने मिनिस्टरी को लात मार दी, मैंने पद छोड़ दिया, मैंने सब छोड़ दिया। लेकिन वह मैं कहता है मैंने सब छोड़ दिया। वह फिर नयी शक्लों में खड़ा हो जाता है। इसलिए धन छोड़ना आसान है क्योंकि धन छोड़ने से मैं मरता नहीं, और मजबूत हो जाता है। धन को चोर भी चुरा सकते हैं, लेकिन त्याग को कोई नहीं चुरा सकता। इसलिए अगर तिजोरी ही मजबूत बनानी हो तो त्याग की तिजोरी बनानी चाहिए। लोहे की तिजोरी तोड़ी जाती हैं, टूट जाती हैं। चोर भी बहुत होशियार हैं। संन्यासी के अहंकार की चोरी नहीं होती, गृहस्थ के अहंकार की चोरी होती है। गृहस्थ नासमझ है, संन्यासी होशियार है, ज्यादा कनिंग है, ज्यादा चालाक है। वह ऐसा मैं मजबूत कर रहा जिसको कोई चुरा नहीं सकता। उसके मैं को आप कैसे चुराइएगा? अगर आप उसके कपड़े छीन कर ले जाओगे तो वह कहेगा, मैंने कपड़े भी त्याग दिये, लो यह झंझट मिटी, कपड़े भी अब नहीं रहे। अब हम और भी मुक्त हो गये। अब वह मैं और मजबूत हो गया, जब वह कहता है मैंने कपड़े भी छोड़ दिये। गृहस्थ नासमझ अहंकारी है, संन्यासी समझदार अहंकारी है। इस लिए गृहस्थ की जब नासमझी टूटती है तो वह भी संन्यासी होना शुरू हो जाता है, तो समझ में आ जाता है कि हम कहां के पागलपन में पड़े हैं। इसमें कोई सार नहीं। धन चोरी चला जाता है, सरकार बदल जाय, तो सब गड़बड़ हो जाता है। कम्यु-निज्म आ जाय, सब गड़बड़ हो जाता है। संन्यासी से कोई कुछ नहीं छीन सकता है उसके पास कुछ है नहीं कि छीने। उसके पास शुद्ध मैं बच गया है। जिस के पास कुछ भी नहीं है छोड़ने का, उसके पास मैं है। सवाल मैं के छोड़ने का है, न धन छोड़ने का सवाल है, न मकान छोड़ने का, न पद छोड़ने का। सवाल मैं छोड़ने का है; लेकिन वह तो मोक्ष की खोज करने वाला भी नहीं छोड़ता। वह कहता है मैं तो रहूंगा, शुद्ध रूप में रहूंगा। प्राण छूट जायगा, लेकिन मैं तो रहूंगा, सब छूट जायगा, लेकिन मैं रहूंगा।

यह बहुत अद्‌भुत बात है। जो सबसे ज्यादा भ्रामक है उसी को बचाने की चेष्टा चलती है। नहीं, जबतक मैं है तबतक कुछ नहीं छूटता, जिस दिन मैं छूट जाता

है उसी दिन सब कुछ छूटता है और जिस दिन मैं छूट जाता है उस दिन मोक्ष है। मैं का कोई भी मोक्ष नहीं, मैं से मुक्ति का नाम मोक्ष है। मैं की कोई मुक्ति नहीं होती कि मैं मुक्त हो जाऊंगा। मुक्त होने से मतलब कि मैं तो मरा, मैं तो गया। मुक्ति में कोई मैं नहीं बचा रहता है। मुक्ति का अर्थ है परमात्म जीवन। मैं नहीं रहा, समग्र की सत्ता रह गयी। मैं सबके साथ एक है और एक मैं हूं। मुझे होना नहीं है, सिर्फ जानना है कि सत्य क्या है। क्या मैं अलग हूं ? क्या मैं पृथक हूं ? क्या पृथक होकर एक क्षण भी जिया जा सकता है ? क्या जीवन का पृथक होना संभव है ? क्या एक व्यक्ति को हम कैप्सूल में बन्द कर दें, सब तरफ से तोड़ दें, वह जियेगा ? एक क्षण भी जियेगा ? जीवन अंतरसंबंध है। जीवन विराट अंतरसंबंध है। सोचें, एक व्यक्ति को कि हमने बन्द कर दिया है एक वैक्युम कैप्सूल में। एक शून्य डब्बे में बन्द कर दिया है। उसका कोई संबंध नहीं रहा दुनिया से। वह एक क्षण भी जी नहीं सकता वहां, एक क्षण भी, हो सकता है वहां वह नहीं होगा, नहीं हो सकता, लेकिन हम सबने अहंकार का कैप्सूल बनाया हुआ है और अहंकार में हम सब अलग अलग खड़े हो गये हैं और कहते हैं मैं हूँ जबकि हम जुड़े हुए हैं। लेकिन फिर भी हम कहते हैं कि मैं हूं अलग और पृथक। जीवन है संयुक्त, अहंकार वियुक्त है। अहंकार की खोज करनी जरूरी है कि यह भ्रम तो नहीं। कहीं एकांत में बैठकर देखा है भीतर की तरफ कहां है अहंकार ? कहां हूं मैं ? पूछते चले जायं, यह हूँ मैं ? और उतर आयेगा नहीं। सिर्फ एक उत्तर आयेगा—नहीं, नहीं, यह भी नहीं। लेकिन अगर किताब से उत्तर सीख लिया तो उतर आयेगा हां, शरीर तो नहीं हूं लेकिन आत्मा हूं। आत्मा तो नहीं हूं लेकिन परमात्मा हूं। उत्तर अगर सीखा हुआ है तो व्यर्थ हो जायेगा। सिर्फ पूछें, इन्क्वायरी चाहिए, अन्वेषण चाहिए कि यह हूं मैं ? और फौरन पता चलेगा कि मैं नहीं हो सकता। हाथ मैं नहीं हो सकता, क्योंकि मैं तो हाथ को जान रहा हूं, पहचानता हूं। शरीर हूं मैं ? शरीर मैं नहीं हो सकता क्योंकि शरीर को मैं पहचानता हूं, शरीर को मैं जानता हूं। जिसको मैं जान रहा हूं वही मैं नहीं हो सकता हूं, मैं जाननेवाला हूं। फिर तो और पूछें, विचार हू मैं ? विचारों को भी जान रहा हूं। मन हूं मैं ? मन को भी जान रहा हूं। पूछते चलिये, पूछते चलिये। आत्मा हूं मैं ? असल में जिसको भी हम पूछ सकते हैं यह हूं मैं, वही हम नहीं होंगे और पूछते पूछते वह घड़ी आयेगी कि पता चलेगा कि अब तो पूछने को कुछ नहीं बचा कि क्या हूं मैं। और उत्तर भी नहीं मिला। उत्तर भी खो जायेगा। पूछने की वृत्ति भी खो जायेगी। साथ ही मैं भी खो जाऊंगा, तब शेष

रह जायेगी एक अनंत शांति, तब शेष रह जायगा अनंत मौन। न वह प्रश्न है, न वह उत्तर है। तब शेष रह जायेगा अनंत विस्तार, तब शेष रह जायगा जीवन और जीवन का एक स्पंदन और तब दिखायी पड़ेगा, यह वृक्ष भी मैं हूं, यह शरीर भी मैं हूं, यह चांद भी मैं हूं, यह तारा भी मैं हूं। वह जो सामने दूसरी आंखें दिखायी पड़ रही हैं उनसे भी मैं ही झांक रहा हूं, मैं ही बोल रहा हूं और वह जो सुन रहा हूं वह भी मैं हूं, मैं ही बोल रहा हूं, दूसरे कोने से मैं ही सुन रहा हूं। वह जिसको मैं प्रेम कर रहा हूं वह भी मैं हूं और वह जो प्रेम कर रहा है वह भी मैं हूं। जिस दिन दिखायी पड़ेगा मैं नहीं हूं उसी दिन एक क्रांति हो जायेगी और दिखायी पड़ेगा मैं नहीं हूं। ये दोनों बातें एक ही अर्थ में हैं। चाहे यह कहें मैं नहीं हूं, सब है और चाहे यह कहें कुछ भी नहीं है, मैं ही हूं। ये दोनों एक ही बातें हैं। इन दोनों का एक ही अर्थ है कि जीवन है, जीवन का अंतहीन अनंत विस्तार है, ऊर्जा का सागर है, एक इनर्जी है जो स्पंदित हो रही है अनंत अनंत रूपों में, लेकिन एक का ही स्पंदन है। और जबतक यह बोध स्पष्ट न हो जाय तबतक बोझ से मुक्ति नहीं मिल सकती, और अहंकार ही सबसे बड़ा बोझ है।

लाओत्से के पास एक आदमी गया और उस आदमी ने पूछा कि मैं मोक्ष चाहता हूं। लाओत्से हंसने लगा। उसने कहा, पागल, तू मोक्ष चाहता है ? उसने कहा, हां मैं मोक्ष चाहता हूं। मैं मोक्ष को कैसे पाऊं ? लाओत्से ने कहा, पहले समझ के आ कि मैं हूं, अगर हो तो मैं मुक्त करने का रास्ता बता दूंगा। और अगर मैं ही नहीं है तो किसको मुक्त होने का रास्ता बताऊंगा ? वह आदमी वापस गया। वर्षों बाद वापस लौटा है, चरणों पर सिर रख दिया है। लाओत्से ने कहा, खोज लिया मैं ? उस आदमी ने कहा, आपने भी क्या आश्चर्यजनक बात कही। मैं को खोजने गया, मैं खो गया। लाओत्से ने कहा, तो मोक्ष का इरादा ? उसने कहा, बात खत्म हो गयी। मैं ही नहीं हूं तो मुक्त किसको होना है और जब मैं ही नहीं है तो मुक्त हो गया, मैं ही बन्धन था। लेकिन हम सब मुक्ति खोज रहे हैं। हम कहते हैं, मुझे शांत होना है। ध्यान रहे, जबतक मैं है तबतक शांति नहीं हो सकती। लेकिन हम पूछते हैं मैं शांत कैसे हो जाऊं ? हम पूछते हैं, लोग शांत कैसे हो जायें ? यह ऐसे ही है जैसे कैंसर पूछे कि मैं स्वस्थ कैसे हो जाऊं ? अगर कैंसर आ जाय और आपसे पूछे कि मैं स्वस्थ कैसे हो जाऊं ? तो हम उससे कहेंगे, इतनी ही तो बीमारी है, कोई स्वस्थ नहीं होता। तू न रहे तो स्वास्थ्य आ जायेगा। कैंसर स्वास्थ्य नहीं हो सकता, कैंसर का न होना स्वास्थ्य होगा। मैं कभी शांत नहीं हो सकता, लेकिन हम सब मैं को शांत करने में पड़े हैं। हम कहते हैं, दुनिया से हमें कोई मतलब नहीं, मैं कैसे शांत हो जाऊं। और

मैं ही अशांत हूं, मैं ही द्वंद्व हूं, मैं ही कष्ट हूं, मैं ही बन्धन हूं और हम पूछते हैं, मैं मुक्त कैसे हो जाऊं ? और बताने वाले लोग हैं, वे कहते हैं–जप करो, तप करो और मुक्त हो जाओगे। और मैं कहता हूं अच्छी बात, अब मैं उपवास करूंगा। और मैं उपवास करता हूं और उपवास के बाद मैं बाजार में आता हूं और कहता हूं, मैंने इतने उपवास किये, मैंने इतने जाप किए। एक लाख माला फेर चुका हूं। मैंने राम–राम लिखकर हजारों किताबें भर दीं।

मैं एक गांव में गया। वहां एक मंदिर बना हुआ है– राममंदिर। उस मंदिर में एक ही काम है। उसमें हजारों पुस्तकें हैं और हर आदमी बैठकर वहां राम–राम लिखता रहता है किताबों में, और वह किताबें रखते जाते हैं। वह कहता है बस करोड़ों राम नाम और हजारो लोग राम नाम लिख कर भेजते रहते हैं और वहां किताबें इकट्ठी होती जाती हैं और हर आदमी हिसाब रखता है कि मैंने कितने लाख राम नाम लिख दिये, मैंने कितने लाख नाम ले लिए, मैंने कितनी मालाएं फेरीं, मैंने कितने उपवास किये। वह मैं बहुत प्रसन्न होता है, वह मैं कहता हैं कि चलो, ठीक है। मैं को करने के नये उपाय मिल गये। यह मैं पहले गिनती करता था कि मेरी तिजोरी में कितने रुपये हैं, अब मैं कहता हूं, मेरी तिजोरी में कितने राम हैं, कितने राम मैंने लिख दिये। वह पहले कहता था मेरे पास कितने मंजिल के मकान हैं, अब वह कहता है मेरे पास कितने मंजिल का उपवास है, मैंने कितने उपवास किये मंजिल पर मंजिल। अब मैं कहता हूं, मैंने यह छोड़ दिया, मैंने यह-यह कर लिया, मैंने इतने नमोकार पढ़ डाले, मैंने इतनी नमाज पढ़ ली, मैंने यह किया, मैंने वह किया और वह मैं नये नये मकान बनाना शुरू कर देता है। और फिर वह मैं कहता है, मुझे मोक्ष चाहिये, मोक्ष कहां है, मोक्ष कैसे मिलेगा ? यह बुनियादी भ्रम है जिससे साधक भटक जाता है। मैं भटकता है, और कोई नहीं भटकता है। फिर वह मैं न मालूम कितने उपाय खोजता है। उस 'मैं' को समझना जरूरी है कि जिसे हम शांत करना चाहते हैं, कहीं वही तो अशांत नहीं है। कभी आपने ख्याल किया, अशांति क्या है ? मैं अगर इस वक्त छूट जाय, कौन-सी अशांति है। एक क्षण को सोचा है, कभी सोचा था इसे, कि अगर मैं नहीं हूं, इससे क्या अशांति है ? कभी यह भी सोचा कि मेरी अशांति के पैदा होने के, मेरी इगो के अतिरिक्त, मैं के अतिरिक्त और कोई कारण है ? एक आदमी ने रास्ते पर नमस्कार भी नहीं किया और मन अशांत हो जाता है। और एक आदमी ने ऐसी आंख से देख दिया कि मन अशांत हो जाता है और एक आदमी ने कह दिया कि तुम कुछ भी नहीं हो और मन अशांत हो जाता है। बेटे ने आज्ञा नहीं मानी और बाप अशांत हो गया। पति पत्नी ही आज्ञा अनुसार नहीं चला और

पत्नी अशांत हो गयी। कभी सोचा कि अशांति का कारण क्या है? अशांति का कारण पति का पत्नी की बात न मानना है? अशांति का कारण बेटे का बाप की बात न मानना है? या अशांति का कारण बाप का मैं है? पत्नी का मैं है, बेटे का मैं है। कौन है अशांति का कारण? कौन कर रहा है अशांत किसको? वह है मेरा मैं। वह कहता है, मेरी नहीं मानी, मैं बाप हूं, मैं बाप बना बैठा हूं। तो वह मैं मां बना बैठा है,वह मैं पति बना बैठा है, वह कहता है मैं। उसने हजारों शक्लें बना रखी हैं। जगह जगह पुकार के कह रहा है, उसकी तृप्ति होनी चाहिए, जो मैं कहूं।

यह जो 'मैं' का सारा का सारा जाल है यही अशांति है। सिर्फ वह अशांति बहुत बढ़ जाती है, जो अशांति बेबूझ हो जाती है। जब अशांति सहना असंभव हो जाता है। वह असहनीय हो तो वह 'मैं' पूछता है कि शांति कैसे मिले? फिर वह मैं शांति की तलाश में जाता है, मैं जाता है शांति की खोज में, गुरुओं के चरण पकड़ता है और कहता है, हमें शांति का रास्ता बताएं, हम शांत होना चाहते हैं, मैं शांत होना चाहता हूं। और गुरु? उसके पास भी अपना मैं है, क्योंकि मैं न हो तो कोई गुरु बनकर बैठेगा कैसे? वह कहेगा, हम शांति देंगे। और जो कहता है मैंने शांति दी, उस बेचारे के पास खुद ही शांति नहीं हो सकती क्योंकि जहां मैं है वहां शांति कैसे हो सकती है? वह कहता है मैं शांति दूंगा। फिर अशांत मन उसके आसपास इकट्ठे होते हैं और फिर सम्प्रदाय खड़े होते हैं, गुरुडम खड़ी होती है, आश्रम खड़े होते हैं, पंथ चलते हैं। सब मैं का उपद्रव है। गुरु भी मैं का उपद्रव है और शिष्य भी। फिर शिष्य बड़े गुरु खोजता है और सिद्ध कर लेना चाहता है कि गुरु पक्का बड़ा है कि नहीं, क्योंकि बड़े गुरु के पास बड़े शिष्य का बड़ा मैं मजबूत होता है और लगता है कि मैं कोई साधारण गुरु का चेला नहीं हूं, बड़े गुरु का चेला हूं, बड़ा चेला हूं। इस तरह मैं मजबूत होता है। अगर उससे कहो कि तुम्हारा महावीर कोई बड़ा गुरु नहीं है, तुम्हारा बुद्ध कोई बड़ा गुरु नहीं है, तुम्हारा महात्मा आधा महात्मा है, तो उसको पीड़ा लगती है। उसको पीड़ा इसलिए नहीं लगती है कि महावीर को चोट लगती है। वह कहता है, मेरा गुरु! मेरा गुरु कमजोर हो गया है, आधा गुरु है? कभी नहीं हो सकता। मेरा गुरु हमेशा पूरा गुरु है। मेरा गुरु तीर्थंकर है, मेरा गुरु अवतार है, मेरा गुरु भगवान है। तो फिर कहता है, तलवारें चल जायेंगी। महावीर को चले ढाई हजार साल हो गये, मुहम्मद को मरे १४०० साल हो गये, जीसस को मरे जमाना गुजर गया। उनकी देह राख में मिल गयी, वह बहुत पहले खो चुके उस राख में जो सब में है। लेकिन तलवार चलाने वाला पीछे खड़ा है। कहता है हम तलवार चला देंगे अगर मुहम्मद को कुछ कहा। क्यों है ऐसा? तुम्हें क्या तकलीफ होती है? अगर

महात्मा छोटा है तो बेचारे का मैं छोटा होता है। यह मुसलमान है और मुसलमान के मैं का मजा तभी तक है जबतक मुहम्मद बड़े हैं। यह जैन है, जैन का मजा तभी तक है जबतक महावीर तीर्थंकर हैं। अगर पता चल जाय कि महावीर तीर्थंकर नहीं हैं तो बेचारे का मैं मरा। फिर क्या यह किसी छोटे गुरु को पकड़कर चल रहा था? गया, सब खो गया। उसको जो पीड़ा हो रही है उसके मैं की पीड़ा है। इस ख्याल को समझ लेना है। इस जगत की सारी अशांति मैं की अशांति है। मैं के अतिरिक्त और कोई अशांति नहीं है लेकिन मजा देखें कि वह मैं कहता है कि मुझे शांत होना है। वह आखिरी तरकीब है मैं की। फिर वह शांत होने के बहाने भी क्या करता है? आंखें बन्द करके बैठ जाता है, आसन लगा लेता है और कहता है कि मैं शांत हो रहा हूं। और बीच बीच में आंखें खोलकर देखता रहता है कि कोई देखने वाला निकला कि नहीं। देखा किसी ने कि नहीं कि कितनी शांति से हम आसन लगाये बैठे हैं। मंदिर में बड़ी देर से बैठे हुए हैं कि और आराधक आये कि नहीं, गाँव में खबर पहुंची कि नहीं। वह मैं देख रहा हूं आंख खोल खोलकर कि कौन कितना मानता है। यह 'मैं' बीच बीच में देख लेता है कि मैं जब इतनी साधना कर रहा हूं तो जनता को पता चल गया है कि नहीं? किस किस को खबर मिल गयी? लोग आना शुरू हो गये हैं कि नहीं?

एक संन्यासी के आश्रम में मैं गया था। एक बड़े मजे की बात हो गयी। सभी आश्रमों में वैसी मजे की बात होती है। संन्यासी एक बहुत बड़े तख्त पर विराजमान है। उस तख्त के नीचे एक छोटा-सा तख्त है, उसपर एक दूसरा संन्यासी विराजमान है। उस तख्त के नीचे और एक छोटा-सा तख्त है उसपर तीसरे संन्यासी विराजमान हैं। मैं गया। उन संन्यासी ने मुझसे कहा, आप जानते हैं, बगल में कौन बैठा हुआ है? मैंने कहा, मैं नहीं जानता, आप बताने की कृपा करें। उन्होंने कहा, आपको पता नहीं, यह आदमी हाईकोर्ट का जज था, संन्यासी हो गया है। सब छोड़ दिया है, बहुत विनम्र है। देखते हैं, यह कभी मेरे बराबर आसन पर नहीं बैठता है, आसन छोटा रखता है। मैंने कहा, महाराज, वह आपसे तो आसन छोटा रखे हुए है लेकिन आपके मरने की प्रतीक्षा करता है, क्योंकि उससे भी नीचे एक तीसरा बैठा हुआ है। जज उससे बड़ा आसन रखे हुए है। आप मरें तो वह आपके आसन पर बैठेगा और वह जो नंबर की सीढ़ी लगी हुई है वह तीसरा आदमी उसके आसन पर बैठेगा। इसमें भी पद है, प्रतिष्ठा है। और इस संन्यासी को क्यों मजा आ रहा है कि एक हाईकोर्ट के जज को नीचे बिठाल दिया। अब बताने की क्या जरूरत है कि हाईकोर्ट का जज था। मामला खत्म हो गया। फिर हाईकोर्ट में जज ही नहीं रहा अब। अब गेरुआ वस्त्र पहनकर आया है तो अब कैसा जज है! लेकिन वह

बताता है कि यह आदमी हाईकोर्ट का जज है, कोई साधारण आदमी नहीं है। यह जो मुझसे नीचे बैठा है, यह कोई साधारण आदमी नहीं। लेकिन इसको बताता क्यों है ? यह बताता इसलिए है कि मैं किसी साधारण आदमी के ऊपर नहीं बैठा हुआ हूँ, हाईकोर्ट का जज बैठा हुआ है नीचे। अपने साथ में हाईकोर्ट जज भी संन्यासी हो गया जो नीचे बैठा हुआ। और यह आदमी विनम्र है। ठीक है, क्योंकि मेरे बराबर नहीं बैठा लेकिन यह आदमी विनम्र है। और आप क्या हैं ? आपको इसमें मजा आ रहा है कि आपके बराबर नहीं बैठता। आप बड़े खुश हुए हैं। गुरु के पैर तो बहुत बार छुए हैं एक बार पैर जरा उनके सिर पर रखकर देख लो, तब असलियत पता चलेगी कि मामला क्या है। तब गुरु गर्दन पकड़ लेगा, जब पता चलेगा कि वहां भी मैं बैठा हुआ है। पैर छूकर वह तृप्त होता है। पैर मत छुओ तो नाराज हो जाता है और अगर सर से पैर लगा दो तो पागल हो उठेगा। और जो हैं उनके पीछे, वे भी पागल हो उठेंगे। क्योंकि उनके गुरु का सारा का सारा जाल पूरे मैं का है और इस मैं के जाल के धार्मिक रूप भी हैं अधार्मिक रूप भी हैं, राजनीतिक रूप भी हैं सांस्कृतिक रूप भी हैं, साहित्यिक रूप भी हैं कलात्मक रूप भी हैं। हजार हजार रास्ते से वह मैं आदमी को पकड़ेगा। इसे पहचानना पड़ेगा, इसे भीतर खोजना पड़ेगा। एक एक इंच की तलाश करनी पड़ेगी कि यह कहां पड़ा है। और जहां जहां आप पहुंच जायेंगे, जहां जहां आप की दृष्टि पहुंच जायेगी वहीं वहीं वह तिरोहित हो जायेगा। जहां जहां आप देख लेंगे कि यहां यहां बैठा हुआ है वहीं वहीं से विलीन होता चला जायगा। खोजें और भीतर एक इंच न छोड़ें जहां खोज न की हो। इंच इंच खोज डालें भीतर और आखिर में आप पायेंगे वह कहीं भी नहीं है। जैसे कोई दिया लेकर किसी अंधेरे घर में जाय तो अंधेरे को खोजने लगे और दिया ले जाय और देखे कोने कोने में कि अंधेरा कहां है ? जहां जहां दिया जायेगा वहीं वहीं अंधेरा नहीं होगा। आखिर में वह घर के बाहर आकर कहेगा, अंधेरा नहीं है। मैंने दिया ले जाकर देखा, वह कहीं नहीं है। लेकिन दिया मत ले जायें तो भीतर अंधेरा है और दिया ले जायें तो नहीं है। जबतक हमने खोज नहीं की तबतक मैं है, जब हम खोजेंगे तब मैं नहीं होगा। इसलिए मैं को बदलने से बचें, मैं की बदलाहट से बचें। मैं बदलने के लिए हमेशा तैयार है। वह कहता है कि इस शक्ल में मैं पसंद नहीं रहा, तो मैं दूसरी शक्ल में राजी हूं। तुम कहते हो धन में अब मुझे मजा नहीं आता तो मैं त्याग में राजी हूं। कोई कहता है पाप करने में अब मजा नहीं होता, अब अहंकार की तृप्ति नहीं होती, तब हम पुण्य करने में राजी हैं। एक कहता है कि शराब घर में जाने में अब मेरे अहंकार को तृप्ति नहीं मिलती। अब ध्यान

रखें, शराब, सिगरेट पीने वाले सब भीतर एक तृप्ति का अनुभव कर रहे हैं। छोटा बच्चा भी अकड़ के सिगरेट पी लेता है क्योंकि वह देखता है कि जितने लोग सिगरेट पीते हैं उसके पीछे उनका अहंकार है। छोटा बच्चा सिगरेट सिगरेट के लिए नहीं पीता है, सिर्फ पीता है कि सिगरेट पीने से बड़प्पन मिलता है। लगता है कि हम भी कुछ हैं। हम कोई साधारण नहीं हैं। वह जो सिगरेट पीने का रस है, सिगरेट का नहीं है, मैं का रस है। सिगरेट में रस क्या हो सकता है ? पागलपन के सिवाय कुछ भी नहीं है। एक आदमी धुआं भीतर ले जाय और बाहर निकाले। यह क्या कर रहे हो ? धुआं भीतर-बाहर किसलिए कर रहे हो, क्या हो गया है तुम्हारे दिमाग में? लेकिन चूंकि सारी दुनिया पागल है इसलिए कोई किसी से नहीं कहता कि यह कर क्यों रहे हो। धुआं बाहर-भीतर क्यों करते हो ? इससे खांसी आ सकती है, तकलीफ हो सकती है। रस तो कुछ भी नहीं है, लेकिन रस है, और रस बिल्कुल दूसरा है। इसलिए जब कोई सिगरेट पीने वाले को समझाता है कि स्वास्थ्य खराब हो जायगा तो उसपर कोई असर नहीं होता। क्योंकि रस है ही नहीं उसमें। रस बिल्कुल दूसरा है। सिगरेट पीने वाला एक अकड़ में आ जाता है। मैं को लगता है कि हमने कुछ किया। सिगरेट पीने में भी ब्रांड हैं, वह सब मैं के ब्रांड हैं। अमीर आदमियों का मैं ऐसी सिगरेट पीता है जिसको बहुत थोड़े लोग पी सकते हैं। फिर वह उसको बार बार नहीं पीता है, सिर्फ हाथ में लेकर धुएं उड़ाता है। बार बार पीने की जरूरत नहीं है । लेकिन वह कीमती सिगरेट को उड़ा देता है। वह सब मैं है। वह कश लेता है और फेंक देता है। कुछ मिलने का सवाल नहीं, असल में सवाल दिखाने का है कि देखो !

यह जो सारा का सारा हमारा जाल है, चाहे हम सिगरेट पीते हों, चाहे हम शराब-घर में जाते हों और चाहे हम कपड़े पहनते हों, उस सबके पीछे असलियत दूसरी ही है। वह सारे के पीछे मैं काम करता है। उस मैं की खोज करनी पड़ेगी, उसकी पहचान करनी पड़ेगी कि वह कहां कहां पकड़े हुए है। मैं कहीं उसके आधार पर तो नहीं जी रहा हूँ ? अगर मैं के आधार पर जी रहा हूं तो अशांति ही संभव है, शांति संभव नहीं है। और हम जी रहे हैं, इसकी खोज करनी पड़ेगी, इसकी इंक्वायरी जरूरी है, इसके भीतर जासूसी करनी पड़ेगी, इसके भीतर जाना पड़ेगा, इसका पीछा करना पड़ेगा कि कहां यह छिपा हुआ है। जन्मों जन्मों से वह पकड़े हुए है और जब मैं की पहचान पूरी होती है, जब वह रेकग्नाइज कर लिया जाता है, जब पहचान लिया जाता है और जब रत्ती-रत्ती पहचान हो जाती है और कण कण और सूक्ष्म से सूक्ष्म उसकी तरंगें पहचान में आ जाती हैं तो वह विदा होने लगता है, विलीन होने लगता है।

एक घड़ी आती है कि मैं विदा हो जाता है। मैं के साथ ही आत्मा विदा हो जाती है। तब जो शेष रह जाता है, तब क्या शेष रह जाता है—वही शेष सत्य है, वही शेष शांति है। उसे कोई भी नाम दो, सत्य कहो, मोक्ष कहो, परमात्मा कहो, नाम से कोई भी फर्क नहीं पड़ता है। कोई भी नाम कहो, सब नाम सत्य हैं उसके लिए। कोई भी नाम दे दें या कोई भी नाम न दें तब भी चल जायगा। लेकिन इधर 'मैं' का मिटना जरूरी है। विज्ञान तो पहुंच गया पदार्थ के मिटने पर, इधर धर्म को भी पहुंचना पड़ेगा। मैं और आत्मा के मिटने पर। जब दोनों मिट जायेंगे, पदार्थ भी और आत्मा भी, तब जो शेष रह जायेगा वह तरंगायित सागर है। वही सागर एक तरफ पदार्थ की तरह ठोस दिखायी पड़ रहा है, वही सागर दूसरी तरफ मैं की तरह ठोस दिखायी पड़ रहा है, पर वह सागर ठोस नहीं है, जीवंत तरंगों का सागर है। जिस दिन यह लगेगा उस दिन रास्ते पर चलना ऐसा नहीं मालूम पड़ेगा कि मैं चल रहा हूं, लगेगा ऊर्जा जा रही है। ऐसा नहीं लगेगा मैं बोल रहा हूं, लगेगा ऊर्जा बोल रही है, वही बोल रही है। ये वेदों के, उपनिषदों के ऋषि अगर यह कह सके कि हम नहीं बोलते उसी की वाणी है, तो उसका कारण यह नहीं था कि जो दावा कर रहे थे कि हम जो बोलते हैं वह इसलिए ही है। उसका कुल कारण इतना था कि हम हैं ही नहीं, बोल कैसे सकते हैं? वही बोल रहा है, वही चल रहा है, वही खा रहा है, वही पी रहा है, वही उठ रहा है, वही जी रहा है, वही जा रहा है, वही जन्म लेता है, वही मरता है, हम हैं ही नहीं। और अगर यह बोध स्पष्ट होता चला जाय तो फिर कैसी अशांति है, कैसा दुख है, फिर कैसी मृत्यु, फिर कैसा अज्ञान, फिर कैसा अंधकार है? फिर सब गया। व्यक्ति मिट जाय, तो सब मिट जाता है जो भी दुखपूर्ण है, किंतु हम सब 'मैं' की गठरी बने हुए हैं।

मैंने सुना है बंगाल के गांव में एक छोटा-सा लोकनाटच है। उस लोकनाटच में एक आदमी भगवान के मंदिर पर वृन्दावन पहुंचा है। वृन्दावन के मंदिर में वह प्रवेश करने लगा, उसके हाथ में कुछ नहीं है, उसके पास कोई वस्तु नहीं है। जूते उसने बाहर रख दिये, छड़ी उसने बाहर छोड़ दी। लेकिन द्वारपाल उसे रोकता है कि ठहरो, ठहरो। सामान बाहर निकालकर आओ। वह आदमी कहता है कि सब सामान तो मैं बाहर रख आया हूं, हाथ देखते नहीं, खाली हैं। मैं बिल्कुल खाली हूं, मुझे जाने दो। मैं भगवान की प्रार्थना में आया हूं। द्वारपाल कहता है, ऐसे नहीं, सब सामान बाहर रख आओ। वह कहता है, आप पागल हो गये हैं, सामान है कहां? वह द्वारपाल कहता है

कि जो सामान तुम बाहर रख आये, उसे ले भी जाओ तो कोई हर्जा नहीं है; लेकिन यह जो मैं है, वह भीतर जायेगा – मैं भगवान के दर्शन करेगा, मैं पूजा करेगा। इस मैं को बाहर रख आओ, क्योंकि इस मैं को लेकर कोई भी आज तक भगवान के मंदिर में प्रविष्ट नहीं हुआ है। लेकिन वह आदमी कहता था कि जो सामान दिखायी पड़ता था वह तो मैं रख आया हूं, यह 'मैं' को कैसे निकाल के रख दूं? द्वारपाल कहता है–जाओ, खोजो, अगर नहीं पा सको तो आ जाना और मिल जाय तो बाहर रख आना।

रूबी ने एक प्रेम-गीत गाया है : एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर जाकर दरवाजा खटखटाता है। पीछे से आवाज आती है कि कौन हो? कौन हो तुम? और वह कहता है मैं हूं, पहचाना नहीं तूने। आवाज नहीं पहचानी, पैर के कदम नहीं पहचाने। मैं हूं तेरा प्रेमी। और भीतर सन्नाटा हो जाता है। वह फिर दरवाजा बन्द कर लेती है जैसे घर में कोई है नहीं। वह चिल्लाता है, क्या हो गया तुझे, बोलती क्यों नहीं, द्वार क्यों नहीं खोलती? मैं हूं तेरा प्रेमी। भीतर से सिर्फ इतनी आवाज आती है कि प्रेम के घर में दो नहीं समा सकते। इधर मैं पहले से ही मौजूद हूं। अब तुम एक मैं और आ गये तो बड़ी तकलीफ होगी। और सब जानते हैं कि प्रेमी के घर दो मैं समा गये हैं, बड़ी मुश्किल है। हर प्रेमी के घर में दो दो मैं बैठे हैं और वहां एक नर्क पैदा हो गया है। उसने कहा, एक मैं हूं, अब दूसरे मैं की इस घर में बिल्कुल जगह नहीं है। अभी तुम लौट जाओ। और उसने यह भी कहा जाते वक्त––ध्यान रखना कि जो प्रेम कहता है मैं, वह प्रेम कैसे हो सकता है? वह प्रेमी वापस लौट गया। वर्ष पर वर्ष बीते, फिर वह नहीं लौटा। न मालूम कितनी बरसातें, कितनी धूप, कितनी रातें, अंधेरा गुजरा तब वह आया। फिर उस द्वार पर दस्तक दी। फिर पीछे से पूछा गया, कौन हो तुम? उसने कहा, अब तो मैं नहीं हूं, तू ही है! और रूबी की कविता कहती है कि द्वार खुल गये। लेकिन रूबी को मरे बहुत दिन हो गये। जैसे मन होता है कि जाकर उसको उठाकर कहूं – कविता तुमने आधे में रोक दी। यह कविता पूरी नहीं है। ठीक ही है, उसने कहा, मैं नहीं हूं, तू ही है। लेकिन जिसका मैं मिट जाता है उसका तू भी मिट जाता है; क्योंकि तू तभी तक दिखायी पड़ता है जब तक मैं है। तो वह कहने लगा मैं नहीं हूं। लेकिन तुम यह कहने वाले भी कौन होते हो कि मैं नहीं हूं। और अगर तुम नहीं हो तो यह कैसे

कहते हो कि तू ही है। रूबी ने जल्दी दरवाजा खोल दिया। मैं अभी दरवाजा खोलने को राजी नहीं होता। मैं तो कहता कि दरवाजा नहीं खुलेगा। और यह भी कहता, अभी लौट जाओ क्योंकि जबतक तू है तबतक मैं कैसे मिट सकता है? लेकिन तब आगे कविता को बढ़ाना बहुत मुश्किल है। शायद इसी-लिए रूबी रुक गयी हो। कविता उसने रोक दी हो। आगे कविता बढ़ानी बहुत मुश्किल है. क्योंकि कविता को बढ़ने के लिए भी दो चाहिएं। सब नाटक के लिए कम से कम दो पात्र चाहिएं और जब एक ही रह जाय तो कैसी कविता? और जब एक ही रह जाय तो कैसा आना? और जब एक ही रह जाय तो किसके द्वार पर दस्तक? फिर कौन पूछेगा, कौन उत्तर देगा? फिर मैं कहता हूं: कविता आगे बढ़ती है, प्रेमी फिर चला जाता है। फिर बरसात, फिर धूप लेकिन फिर वह कभी नहीं लौटता है, क्योंकि लौटनेवाला ही नहीं रह गया है। लेकिन तब वह तो नहीं लौटता किंतु जिसकी तलाश थी वह खुद ही उसके पास पहुंच जाता है। क्योंकि जब मैं ही मिट गया है तो फिर मिटने की बात ही क्या रह गयी! फिर तो प्रेमी बाहर चला जाता है। लेकिन मैं कहता हूं: **आप कभी परमात्मा तक नहीं पहुंच सकते लेकिन परमात्मा आप तक आ जायगा उस दिन, जिस दिन आप नहीं हैं।** आज तक कोई आदमी ईश्वर तक नहीं पहुंचा है और न पहुंच सकता है। और आज तक कोई आदमी मोक्ष तक नहीं पहुंचा है और न पहुंच सकता है। जिस दिन आदमी मिट जाता है, मोक्ष आता है, परमात्मा को पा जाता है। वह आया ही हुआ है। वह मैं के कारण दिखायी नहीं पड़ता है। वह मौजूद ही है। वह चारों तरफ खड़ा है, यहीं है, लेकिन इस मैं के कारण दिखायी नहीं पड़ता है। यह 'मैं' एकमात्र अंधापन है, ब्लांइडनेस है और यह मैं चला जाय, तो आंख खुल जाती है। इस अनुभव में ही जीवन की सार्थकता और धन्यता उपलब्ध होती है। इस अनुभव में ही वह घड़ी आती है जो आनन्द की है। वह घड़ी जिसमें दुख का सवाल नहीं, क्योंकि गया वह। वह गया कि चली गयी घड़ी जो दुख की थी। वह ग्रंथि चली गयी जो दुखती थी। वही दुखता था वही चला गया। अब कैसा दुख, अब कैसी पीड़ा, अब कैसी मृत्यु? क्योंकि वह मैं ही था जो मरता था, जो है वह तो कभी नहीं मरा है। जो है वह कभी मरता ही नहीं है। वह मैं ही बार बार जन्मता हूं और बार बार मरता हूं। इसलिए भूल कर यह मत कहना कि कभी आतमा का पुनर्जन्म होता है। आत्मा का कोई पुनर्जन्म नहीं है। सिर्फ 'मैं' बराबर जन्मता है। सब पुनर्जन्म इगो के

हैं और जिस दिन 'मैं' नहीं उस दिन कोई पुनर्जन्म नहीं। फिर जीवन है। फिर नहीं कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है, फिर अंतहीन अनादि जीवन है। उस अनादि जीवन का नाम परमात्मा है, उसका नाम मोक्ष है, वही सत्य है। हम असत्य हैं इसलिए उस सत्य को नहीं पाते। इस बात को खोजें। इस असत्य में, मैं की ही शक्ति में, खोज नहीं की जा सकती। इस असत्य को खोजें, खोजें। खोज से यह असत्य मिल जायगा, गिर जायगा, शून्य हो जायगा। इसके शून्य होते ही सत्य प्रकट हो जाता है। **मैं को मिटाना है। मैं को मिटते हुए जानना है। ऐसा जानना है कि मैं मिट जायगा। और जहां मैं नहीं है वहीं ध्यान है, वहीं द्वार है।** जिस द्वार से हमने बात शुरू की थी वह बहुत बन्द द्वार हैं। एक खुला द्वार चाहिए। सब द्वार जो बन्द हैं 'मैं' के द्वार हैं और एक खुला द्वार जो है वह 'ना मैं' है, वह 'नो आई' का द्वार है। वही ज्ञान है। ध्यान यानी ज्ञान। आप नहीं हैं। गैर ध्यान यानी जहां आप हैं। अपने को, स्वयं को, आत्मा को, अहंकार को, आत्मीयता को सबको विदा दे दें। विदा आप नहीं दे सकते हैं। खोजेंगे और पायेंगे तो खुद विदा हो जाता है।

★

जिसका 'मैं' मिट जाता है उसका 'तू' भी मिट जाता है, क्योंकि 'तू' तभी तक दिखाई पड़ता है जब तक 'मैं' है

मृत्यु पर विजय

जब कोई मृत्यु को गले लगा लेता है,
तो मृत्यु हार जाती है, क्योंकि मृत्यु को गले
लगाने वाला मृत्युंजय हो जाता है

संकलन : पुष्करभाई गोकाणी

जो मरने की कला सीख लेता है वह जीवन की कला में भी निष्णात हो जाता है, जो मरने के लिए राजी हो जाता है वह परम जीवन का अधिकारी भी हो जाता है। सिर्फ वे ही, जो मिटना जान लेते हैं, वे ही होना भी जान पाते हैं। ये बातें उल्टी दिखाई पड़ सकती हैं, क्योंकि हमने जीवन और मृत्यु को उल्टा और विरोधी मान रखा है। वे विरोधी नहीं हैं और नहीं उल्टी हैं। हमने एक झूठा 'कंट्राडिक्शन', एक झूठा विरोध उनके बीच खड़ा कर रखा है। इसके बहुत घातक परिणाम हुए हैं। मनुष्य जाति को जितनी हानि इस विरोध की वजह

पीड़ा की छटपटाहट
[रोदें का एक स्केच]

से हुई है उतनी शायद और किसी बात से नहीं हुई। यह विरोध फिर बहुत तलों पर फैल गया है। जो चीजें इकट्ठी हैं, उन्हें हम अगर खंड-खंड, टुकड़े-टुकड़े बांट दें और न केवल खंड-खंड में बांटें बल्कि विरोधी खंडों में बांट दें तो इसका अंतिम परिणाम मनुष्य को विक्षिप्त बनाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता।

समझ लें, अगर कोई ऐसी पागलों की बस्ती हो जहां वे ठंडा और गर्म को विरोधी और अलग-अलग चीजें मानते हों, तो उस बस्ती में बड़ी मुश्किल और परेशानी शुरू हो जायगी। इसलिए परेशानी शुरू हो जायगी कि ठंडा और गर्म दो चीजें नहीं हैं, एक ही चीज की दो मात्राएं हैं। और जो हमें ठंडे और गर्म का अनुभव होता है वह निरपेक्ष अनुभव नहीं है, बहुत सापेक्ष बहुत 'रिलेटिव' अनुभव है। एक छोटा-सा प्रयोग करके देखें तो समझ में आ जायगा। चूंकि कभी वैसा प्रयोग नहीं किया होगा इसलिए यह पता नहीं चला होगा। हमेशा हम देखते हैं कि कोई चीज गर्म है, कोई चीज ठंडी है और यह भी देखते हैं कि जो गर्म है वह गर्म है, जो ठंडी है वह ठंडी है। ठंडी और गर्म दोनों चीजें एक कैसे हो सकती हैं। घर लौटकर एक छोटा-सा प्रयोग करें। एक बर्तन में गर्म पानी रख लें, एक बर्तन में ठंडा पानी रख लें और एक

बर्तन में साधारण पानी रख लें--न गर्म, न ठंडा। एक हाथ को उबलते पानी में डालें और एक हाथ को बर्फीले ठंडे पानी में। फिर दोनों हाथों को निकाल कर साधारण पानी में डाल दें, और तब दोनों हाथ अलग अलग खबर देंगे। एक हाथ कहेगा कि पानी ठंडा है और एक हाथ कहेगा कि यह पानी गर्म है। फिर वह पानी क्या है? और अगर एक ही साथ एक हाथ को पानी ठंडा और एक हाथ को गर्म मालूम पड़ता है, तो हमें समझना पड़ेगा कि पानी न तो ठंडा है और न गर्म है। हमारे हाथ के सापेक्ष में वह ठंडा और गर्म मालूम होता है।

ठंडा और गर्म एक ही चीज के अनुपात हैं। वे भिन्न-भिन्न चीजें नहीं हैं। उनमें जो भेद है वह मात्रा का है, गुण का भेद नहीं है। बचपन में और बुढ़ापे में कैसा भेद है, आपने कभी सोचा है? आमतौर से हम समझते हैं, बड़ी उल्टी चीजें हैं। कहां बचपन और कहां बुढ़ापा! लेकिन बचपन और बुढ़ापे में फर्क क्या है? सिर्फ वर्षों का, दिनों का ही फर्क है। एक बच्चा पांच साल का है, चाहे तो हम कह सकते हैं कि यह पांच साल का बूढ़ा है, इसमें क्या कठिनाई है। सिर्फ हमारी भाषा की आदत है जो हम कहते हैं कि पांच साल का बच्चा है। अंग्रेजी में तो उसे कहते हैं 'फाइव इयर ओल्ड'। उसका मतलब यह है कि पांच साल का बूढ़ा है। फिर एक सत्तर साल का बूढ़ा है, एक पांच साल का। दोनों में फर्क क्या है? और चाहें तो सत्तर साल के बूढ़े को कह सकते हैं कि सत्तर साल का बच्चा है। बच्चा ही तो बढ़ते-बढ़ते बूढ़ा हो जाता है। लेकिन देखते हैं जब दोनों को अलग-अलग रख कर, तो लगता है कि दो विरोधी चीजें हैं। बचपन और बुढ़ापा दो उल्टी चीजें हैं। अगर बचपन और बुढ़ापा उल्टी चीजें हैं तो कोई बच्चा कभी बूढ़ा नहीं हो सकता है। कैसे होगा? उल्टी चीजें कैसे हो जायेंगी? और कभी आपने पता लगाया है कि कोई बच्चा बूढ़ा किस दिन हो जाता है, किस रात हो जाता है? कलैंडर पर कहीं लिख सकते हैं कि फलां दिन यह आदमी बच्चा था और फलां दिन बूढ़ा हो गया। कलैंडर पर कहीं नहीं लिख सकते। असल में कुछ कठिनाई ऐसी है जैसे सीढ़ियां हैं ऊपर छत पर चढ़ने की। नीचे की सीढ़ी दिखाई पड़े, ऊपर की सीढ़ी दिखाई पड़े और बीच की सीढ़ियां दिखाई न पड़ें, तो हमें ऐसा लगेगा कि नीचे की सीढ़ी और ऊपर की सीढ़ी बड़ी दूर, बड़े फासले पर अलग अलग हैं। लेकिन जिसे पूरी सीढ़ियां दिखायी पड़ें वह कहेगा कि कोई फर्क महीं है। नीचे की और ऊपर की सीढ़ी के बीच सिर्फ

सीढ़ियों का ही फर्क है। जो नीचे की सीढ़ी है वही ऊपर की सीढ़ी से जुड़ी है। नर्क और स्वर्ग में गुण का फर्क नहीं है, मात्रा का फर्क है। नर्क और स्वर्ग में वही फर्क है जो ठंडे और गर्म में है, जो नीचे की सीढ़ी में और ऊपर की सीढ़ी में है, बच्चे में और बूढ़े में है। जन्म और मृत्यु में भी उतना ही फर्क है। नहीं तो कोई जन्मा हुआ व्यक्ति कभी नहीं मर पायेगा। अगर विरोध हो तो जन्म मृत्यु पर पहुंच कैसे सकता है? हम पहुंच तो वहीं सकते हैं जो हमारा सहज विकास हो। जन्म बढ़ते-बढ़ते मृत्यु बन जाता है। इसका मतलब यह है कि जन्म और मृत्यु एक ही चीज के दो बिंदु हैं। एक बीज को हम बोते हैं और वह बढ़ते-बढ़ते पौधा बन जाता है, फिर फूल बन जाता है। बीज में और फूल में विरोध क्या है कभी? बीज से ही तो फूल निकलता है और फूल बन जाता है। बीज में विकास है, बीज में 'ग्रोथ' है। जन्म ही मृत्यु बन जाता है। लेकिन न मालूम कैसी नासमझी है कि दुनिया में आदमी को यह ख्याल बैठ गया है कि जन्म और मृत्यु में विरोध है, जीवन और मौत अलग-अलग बातें हैं। हम जीना चाहते हैं, हम मरना नहीं चाहते और हमें यह पता नहीं है कि जीने में ही मरना छिपा है। और जब हमने एक बार तय कर लिया कि हम मरना नहीं चाहते तो उसी वक्त तय हो गया कि हमारा जीना कठिनाई और मुश्किल में पड़ जायगा। यह सारी मनुष्य जाति विक्षिप्त हो गयी है, उसका मस्तिष्क खण्ड-खण्ड में, टुकड़े-टुकड़े में टूट गया है। उसके टूटने का कारण है--हमने सारे जीवन को खण्ड-खण्ड में लिया है और खण्डों को विरोध में खड़ा कर दिया है। एक ही आदमी है, उस आदमी के हमने टुकड़े-टुकड़े कर दिये हैं और टुकड़े-टुकड़े में विरोध पैदा कर दिया है। हमने सब तरफ ऐसा ही किया है। आदमी से कहते हैं क्रोध मत करना, क्षमा करना, और ख्याल भी नहीं है हमें कि क्षमा और क्रोध के बीच सिर्फ मात्रा का भेद है, वही डिग्री का जो ठण्डे और गर्म के बीच है, वही जो बचपन और बुढ़ापे के बीच है। ऐसा कह सकते हैं कि बहुत कम हो गयी क्षमा का नाम क्रोध है, ऐसा कह सकते हैं बहुत कम हो गये क्रोध का नाम क्षमा है। विरोध नहीं है। लेकिन मनुष्य की सारी पुरानी शिक्षाएं ऐसा सिखाती हैं कि क्रोध छोड़ो और क्षमा वरण करो--जैसे कि क्रोध और क्षमा विरोधी चीजें हैं कि तुम क्रोध को काट डालो और क्षमा को बचा लो। इसका एक ही परिणाम हो सकता है कि आदमी खण्ड-खण्ड में टूट जाय और परेशानी में पड़ जाय।

पुराना सारा आधार कहता है कि काम और ब्रह्मचर्य उल्टी चीजें हैं। इससे ज्यादा गलत कोई बात नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य कम से कम हो गया सैक्स है। सैक्स ज्यादा से ज्यादा उतरता-उतरता, कम-कम होता हुआ ब्रह्मचर्य है। उन दोनों के बीच जो फासला है वह दुश्मनी का और विरोध का नहीं है। ध्यान रहे, जगत में विरोध जैसी चीज ही नहीं है। असल में विरोध जैसी चीज जगत में हो ही नहीं सकती, नहीं तो दो विरोधों को मिलाने का उपाय ही न रह जायगा। अगर मृत्यु अलग हो और जन्म अलग हो, तो जन्म अपने रास्ते पर चलेगा, मृत्यु अपने रास्ते पर चलेगी। पैर अलग, लेकिन मिलेंगे कहीं भी नहीं—जैसे दो समानांतर रेखाएं कहीं भी नहीं मिलतीं। ऐसे ही जन्म और मृत्यु की कहीं भी मुलाकात न हो पायेगी। यह कैसे संभव है? जन्म और मृत्यु घुले-मिले हैं, एक ही चीज के दो छोर हैं। जब मैं यह कह रहा हूं तो मैं असल में यह कह रहा हूं कि आने वाले भविष्य में अगर मनुष्य को विक्षिप्त होने से, पागल होने से बचाना हो तो पूरी जिन्दगी को स्वीकार करना पड़ेगा। उसमें कोई खण्ड काटकर विरोध में खड़े नहीं करने पड़ेंगे। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जो कहेगा कि काम ब्रह्मचर्य से उल्टा है तो सैक्स को काट डालो, तो वह सैक्स को काट डालने की चेष्टा में ही नष्ट हो जायगा, ब्रह्मचर्य को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। सैक्स को काट डालने की चेष्टा में चित्त सैक्स पर ही अटकता रह जायगा। ब्रह्मचर्य कभी उपलब्ध होने वाला नहीं है। उस व्यक्ति का चित्त अत्यंत तनाव में, परेशानी में पड़ जायगा, उसकी मौत हो जायगी, उसकी जिन्दगी अत्यंत दूभर हो जायेगी, वह बोझिल हो जायेगा, वह जी ही नहीं पायेगा। वह बड़ी कठिनाई में पड़ जायेगा। मैं कह रहा हूं और वही तथ्य है कि सैक्स और ब्रह्मचर्य में नीचे की सीढ़ी और ऊपर की सीढ़ी का संबंध है। सैक्स पर कदम रखते-रखते आदमी ब्रह्मचर्य में प्रविष्ट हो जाता है—वह सैक्स की ही कम से कम होती गयी मात्रा है। उस जगह जहां करीब-करीब ऐसा लगता है कि सब शून्य हो गया है, वह आखिरी छोर आ गया, तो फिर जीवन में विरोध नहीं होता, तनाव नहीं होता, फिर जीवन में अशांति नहीं होती, फिर हम जीवन को सहज जी सकते हैं।

मैं जो विचार आपको कह रहा हूं वह सहज जीवन को जीने का है—सब पहलुओं पर अत्यंत सहजता से। लेकिन हम कहीं भी उसको सहजता से नहीं जी पाते, क्योंकि हम उसे असहज बनाने की तरकीबें सीख गये हैं। अगर हम किसी आदमी को कह दें कि तुम सिर्फ बायें पैर से चलना; क्योंकि बायां

पर धर्म है और दायां पैर अधर्म है, इसलिए दायें से मत चलना। और वह आदमी यह समझ ले (और समझने वाले मिल सकते हैं क्योंकि हर तरह की नासमझी को समझने वाले सदा मिल गये हैं) तो ऐसे आदमी मिल जायेंगे जो इस बात के लिए राजी हो जायेंगे कि बायें पैर से चलना धर्म है और दायें पैर से चलना अधर्म है, तब वे दायें पैर को काटने लगेंगे और बायें से चलने की कोशिश करने लगेंगे। लेकिन वे कभी भी न चल पायेंगे। दायें और बायें दोनों पैर का मेल चलता है, कोई एक पैर नहीं चलता है, यद्यपि प्रति बार जब उठता है तब एक ही पैर उठता है, इसलिए भूल हो सकती है। क्योंकि जब भी आप उठाते हैं एक ही पैर उठाते हैं, इसलिए भूल हो सकती है इस बात की कि चलते हैं एक पैर से, क्योंकि जब उठाते हैं तब एक उठाते हैं। लेकिन पता रहे, जब एक उठाते हैं तब उसके उठने में वह जो दूसरा खड़ा है वह उतना ही सहयोगी है जितना उसका उठना। जो रुक गया है, जो ठहर गया है वह उतना ही आधार है। जिस दिन कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है उस दिन ठहर गया सैक्स उतना ही आधार होता है जितना बायां पैर जब उठता है और दायां खड़ा होकर उसका आधार होता है। अगर दायां न हो, तो बायां उठ न पायेगा। ठहर गया सैक्स ब्रह्मचर्य के लिए कदम बनता है और ब्रह्मचर्य का कदम इसलिए उठ सकता है कि सैक्स का कदम ठहरा हुआ है। लेकिन सैक्स के कदम को काट डालना है जड़ से, तोड़ डालना है, तो सैक्स कट जायेगा, ब्रह्मचर्य उपलब्ध नहीं होगा और मनुष्य अधर में लटका हुआ रह जायेगा। जैसा कि सारी पुरानी शिक्षाओं ने मनुष्यता को अधर में लटका दिया है।

जिन्दगी में जो हमें दिखायी पड़ रहा है वह सब दायें और बायें कदम हैं, वे सब दायें और बायें पैर हैं। यहां जिन्दगी में सब इकट्ठा है। एक ही बड़े संगीत के स्वर हैं। इसमें कुछ भी काटा, तो कठिनाई हो जायेगी। कोई आदमी कह सकता है कि काला रंग बुरा है। लोग हैं कहने वाले कि काला रंग बुरा है, तो शादी में काली साड़ी नहीं पहनने देंगे और कोई मर जायगा, तो काला कपड़ा पहनेंगे। काले रंग को बुरा कहने वाले लोग हैं और सफेद रंग को पवित्र कहने वाले लोग हैं। ठीक है, प्रतीक की तरह बात हो सकती है, लेकिन अगर कोई कहे कि काले रंग को काट डालेंगे, मिटा डालेंगे दुनिया से, तो ध्यान रहे -- काले रंग के मिटते ही सफेद रंग बहुत कम सफेद रह जायेगा। क्योंकि सफेद की बहुत सफेदी उसके चारों तरफ फैले रंग से ही आती है।

स्कूल में बोर्ड पर जो लिखता है तो काले बोर्ड पर लिखता है एक खड़िया से। पागल है! सफेद दीवाल पर क्यों नहीं लिखता? सफेद दीवाल पर लिखा जा सकता है, लेकिन पढ़ा नहीं जा सकता है। क्योंकि वह जो सफेदी उभरती है वह पीछे के काले से उभरती है। असल में सफेदी के उभार में काले का हाथ है और जिसने काले से दुश्मनी की उसका सफेद फीका हो जायगा। यह ध्यान रखना, जिसने क्रोध का विरोध किया उसकी क्षमा नपुंसक हो जायगी क्योंकि क्षमा में जो बल है वह क्रोध का है।

वह जो क्रोध कर सकता है उसमें ही क्षमा का बल है। जितना बड़ा क्रोध उसके भीतर जग सकता है उतनी ही बड़ी क्षमा की यात्रा हो सकती है, और उसकी क्षमा में जो रौनक आयेगी वह रौनक आयेगी क्रोध के तेज से। अगर क्रोध नहीं है तो क्षमा बिल्कुल बेरौनक हो जायेगी, एकदम मुर्दा और मरी हुई। अगर किसी व्यक्ति का सैक्स कट जाय -- उसके काटने के उपाय हैं -- ध्यान रहे, लेकिन तब वह ब्रह्मचारी नहीं हो सकेगा, सिर्फ नपुंसक हो जायेगा। दोनों बातों में बुनियादी फर्क है। सैक्स को काट डालने के उपाय हैं लेकिन सैक्स को मिटाकर कोई ब्रह्मचारी नहीं हो सकता, सिर्फ नपुंसक होगा। हां, सैक्स को रूपांतरित करके, सैक्स को स्वीकार करके, उसकी ऊर्जा को आगे की यात्रा पर ले जाकर कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकता है। लेकिन ध्यान रहे, ब्रह्मचर्य की आंखों में जो तेज है वह सैक्स की शक्ति का ही तेज है, वही रूपांतरित हो गयी है। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि जीवन में जिनको हम विरोध कहते हैं वे विरोध नहीं हैं। **जीवन एक बहुत रहस्यपूर्ण व्यवस्था है। उस रहस्यपूर्ण व्यवस्था में विरोध खड़े किये गये हैं ताकि चीजें हो सकें।**

कभी आपने देखा है, एक मकान बन रहा हो, उसके सामने ईंटों का ढेर लगा हो। सब ईंटें एक जैसी हैं। फिर आर्चिटेक्ट है, मकान बनाने वाला है, वास्तुशिल्पी है, इंजीनियर है। वह मकान पर एक आर्च बना रहा है, एक द्वार बना रहा है, एक गोल दरवाजा बना रहा है। वह ईंटों को विरोध में रख देता है। एक सी ईंटें थीं। वह ईंटों को एक दूसरे के खिलाफ रख देता है दरवाजे पर और खिलाफ में रखी गयी ईंटें एक दूसरे को सम्हाल लेती हैं। सब ईंटें एक जैसी थीं, उनमें कोई फर्क नहीं था, और उनको वह एक जैसा रख दे तो आर्च न बनेगा, दरवाजा फौरन गिर जायेगा, क्योंकि एक जैसी ईंटों में कोई बल नहीं होता। जहां विरोध हो जाता है वहां बल आ जाता है। सब बल विरोध से पैदा होता है, सब ऊर्जा विरोध से पैदा होती है। जीवन

में जो ऊर्जा पैदा हुई है, जो शक्ति पैदा हुई है, जो इनर्जी पैदा हुई है उस का सूत्र है विरोध; लेकिन जो ईंटें हैं वे बिल्कुल एक जैसी हैं, उनको विरोध में रखा गया है। वह जो परमात्मा है, वह जो आर्चिटेक्ट है जीवन का, वह बहुत होशियार है। वह जानता है कि जीवन एकदम ठण्डा हो जायगा, एकदम विलीन हो जायगा अगर ईंटें विरोध में न रखी जा सकें। तो उसने ईंटें विरोध में रख दी हैं। क्रोध की ईंटें हैं, क्षमा की ईंटें हैं, सैक्स की ईंटें हैं, ब्रह्मचर्य की ईंटें हैं —— विरोध में रख दी हैं और उन दोनों के विरोध से शक्ति और ऊर्जा पैदा हो गयी है। वह ऊर्जा जीवन है। उसने जन्म और मृत्यु की ईंटों को जमाकर रख दिया है और उन दोनों से मिलकर जीवन का द्वार बन गया है। कुछ लोग हैं जो कहते हैं, हम जीवन की ईंट ही स्वीकार करेंगे, मृत्यु की ईंट स्वीकार नहीं करेंगे। मत करो। न करोगे तो उसी वक्त मर जाओगे; क्योंकि तब एक-सी ईंटें रह जायेंगी —— जीवन-जीवन की ईंटें रह जायेंगी जो उसी वक्त गिर जायेंगी।

यह भूल बहुत दोहराई जा चुकी है। इससे कोई दस हजार साल से आदमी बुरी तरह से पीड़ित और परेशान है। वह कहता है, हम एक सी ईंटें रखेंगे। विरोधी ईंट नहीं चाहिए, विरोध को हटा दो। वह कहता है, या तो हम परमात्मा को मानेंगे तो परमात्मा को ही मानेंगे, फिर हम संसार को न मानेंगे। वह कहता है, परमात्मा है, तो संसार है ही नहीं, हम संसार को मान ही नहीं सकते। वह कहता है, हम जंगल चले जायेंगे, हम बाजार में खड़े नहीं हो सकते, हम दूकान पर बैठ नहीं सकते, हम संन्यासी हो जायेंगे क्योंकि कौन संसार को मानता है। ख्याल करो, अगर भूल-चूक से कहीं दुनिया का दिमाग बिगड़ जाय और सारे लोग संन्यासी हो जायं, तो क्या परिणाम होंगे? ठीक उसी दिन, एक दिन भी आगे नहीं चलेगा मामला, उसी दिन पृथ्वी राख हो जायेगी। असल में वह जो संन्यासी है उसको पता नहीं है कि संन्यासी भी जिन्दा है। उसका बायां कदम उठ रहा है क्योंकि कोई दूकान पर बैठा हुआ भी काम चला रहा है। उधर एक पैर रखा हुआ है इसलिए यह पैर उठ रहा है। संन्यासी के प्राण आ रहे हैं संसार से। वह भ्रम में है कि वह अपने में जी रहा है। उसके सारे प्राण आ रहे हैं संसार से और वह संसार को गाली दिये जा रहा है और कह रहा है कि संसार छोड़ दो, संन्यासी हो जाओ। उसे पता नहीं कि वह आत्महत्या का उपाय करवा रहा है। उसमें वह भी मरेगा, वह भी बच नहीं सकता। क्योंकि वह एक-सी ईंटें रखने के ख्याल में है।

इससे उल्टे लोग भी हैं, वे कहते हैं कोई परमात्मा नहीं है, संसार ही संसार है, हम तो सिर्फ पदार्थ को मानते हैं। उन्होंने भी एक दुनिया बनाने की कोशिश की सिर्फ पदार्थ को मानकर। वे भी बड़े उपद्रव में पहुंच गये हैं। आत्महत्या वहां भी हो जायगी, क्योंकि अगर पदार्थ ही पदार्थ है और कोई परमात्मा नहीं है तो जीवन से वह बात गयी जो रस लाती है, जो खिंचाव लाती है, जो गति लाती है, जो उठने की अभीप्सा लाती है —— वह बात गयी। अगर कोई परमात्मा नहीं है और पदार्थ ही पदार्थ है, तो जीवन का अर्थ क्या? जीवन बिल्कुल व्यर्थ हो गया! इसलिए पश्चिम में मीनिंगलेसनेस की बात चलती है। सार्त्र है, कामू है, काफ्का है और सारे लोग हैं। आज पश्चिम के सारे विचारकों का एक स्वर है कि जीवन जो है वह अर्थहीन है। शेक्सपियर का एक वचन एकदम सार्थक हो गया है। अब वह सारे पश्चिम के विचारक यह दोहराते हैं जिन्दगी की बाबत कि "एक मूर्ख के द्वारा कही हुई कहानी है यह जिन्दगी, जिसमें शोरगुल बहुत है, मतलब बिल्कुल नहीं है।" मतलब हो ही नहीं सकता, क्योंकि पदार्थ ही पदार्थ की ईंटें रख दीं तो मतलब बिल्कुल खो जायेगा। जैसे संन्यासी संसार से मतलब हटा देंगे, वैसे अकेले संसारी भी मतलब हटा देंगे। यह बड़े मजे की बात है कि संसारी के ऊपर संन्यासी का पैर चलता है और यह मज़े की बात है कि संन्यासी के पैर के ऊपर संसारी का भी पैर चलता है। असल में बायें पर दायां निर्भर है, दायें पर बायां निर्भर है और यह निर्भर विरोध मालूम पड़ता है, लेकिन गहरे में विरोध नहीं है। यह एक ही व्यक्तित्व के दोनों पैर हैं जिन पर एक व्यक्तित्व थमता और एक व्यक्तित्व चलता है। जीवन के इस विरोध को ठीक से समझे बिना कोई भी जीवन के पूर्ण सत्य को कभी अनुभव नहीं कर सकता है। और जो विरोध में कहेगा कि आधे को हम काट देंगे वह कभी बुद्धिमानी को उपलब्ध नहीं होगा। आधे को काटा जा सकता है, लेकिन आधे के कटते ही शेष आधा भी मर जायेगा, क्योंकि उस आधे को जीवन या प्राण इस आधे से अनिवार्य रूप से मिलता था। इसी से ही मिलता था।

मैंने सुना है, दो फकीर थे और उन दोनों फकीरों में एक बड़ा लंबा विवाद था। उनमें एक फकीर था जो इस बात को मानता था कि कुछ पैसे वक्त-बेवक्त अपने पास रखना जरूरी है, उचित है। इस बारे में उसका निरंतर मित्र से विवाद होता था। दूसरा मित्र कहता था —— पैसे की क्या जरूरत है? हम संन्यासी हैं, पैसे तो वे रखते हैं जो संसारी हैं। और वे दोनों दलीलें देते

थे। वे दोनों ठीक ही दलीलें देते थे ऐसा मालूम पड़ता था। इस जगत का बड़ा रहस्य यह है कि इस जगत के बड़े रहस्य में जो विरोध की ईंटें रखी गयी हैं उनमें से किसी भी एक ईंट के संबंध में पूरी दलीलें दी जा सकती हैं और दूसरी ईंट के संबंध में भी उतनी ही दलीलें दी जा सकती हैं। इस विवाद का कभी अंत नहीं हो सकता, क्योंकि वहां दोनों ईंटें लगी हुई हैं। कोई भी इशारा करके बता सकता है कि देखो मेरी ईंटों से बना हुआ है यह और दूसरा भी बता सकता है कि मेरी ईंटों से बना हुआ है। और जिन्दगी इतनी बड़ी है कि बहुत कम लोग इतना विकास कर पाते हैं कि पूरे द्वार को देख पायें। वह जो ईंटें दिखायी पड़ती हैं उतनी ही दिखायी पड़ती हैं। एक कहता है कि द्वार संन्यास से ही तो बना हुआ है, ब्रह्म से बना हुआ है, आत्मा से बना हुआ है। दूसरा कहता है पदार्थ से बना है, मिट्टी से बना है। सब मिट्टी में गिर जायेगा, उसी से बना हुआ है, और कुछ भी नहीं है। वह भी ईंटें बता सकता है। इसमें न आस्तिक जीतता है, न नास्तिक जीतता है। न पदार्थवादी जीतता है, न अध्यात्मवादी जीतता है। जीत भी नहीं सकते हैं, क्योंकि वह जिंदगी का आधा-आधा तोड़कर कह रहे हैं। उन दोनों में बड़ा विवाद था—वह जो कहता था पैसे पास होना जरूरी है, और वह जो यह कहता था पैसे की क्या जरूरत है। वे दोनों एक दिन सांझ एक नदी के किनारे भागे हुए पहुंचे हैं। रात उतरने के करीब है। मांझी नाव बांध रहा है। उन्होंने नाव बांधते उस मांझी से कहा—नाव मत बांधो, हमें उस पार पहुंचा दो, रात उतरने को है, हमें उस पार जाना जरूरी है। उस मांझी ने कहा—अब तो मैं दिन भर का काम निबटा चुका और अपने गांव वापस लौट रहा हूं। अब सुबह उतार दूंगा। उन्होंने कहा—नहीं, सुबह तक हम प्रतीक्षा नहीं कर सकते। हमारा गुरु, जिसके पास हमें जाना है, मृत्यु के निकट है और खबर आयी है कि सुबह तक उसके प्राण निकल जायेंगे। उसने हमें बुलावा भेजा है। हम रात नहीं रुक सकते। मांझी ने कहा—मैं पांच रुपये लूंगा तो उतार दूंगा। तो जो फकीर कहता था कि रुपये पास रखना चाहिए वह हंसा और कहा—कहो, दोस्त, अब क्या ख्याल है, पैसा रखना व्यर्थ है या सार्थक ? वह दूसरा आदमी सिर्फ हंसता रहा। फिर उसने पांच रुपये निकाले, मांझी को दिये। वह जीत गया है। फिर वे नाव पर सवार हुए और उस पार पहुंच गये। फिर उतर कर उसने कहा—कहो, मित्र, आज नदी के पार न उतर पाते अगर पैसे पास न होते। इस पर दूसरा खूब हंसने लगा। उसने

कहा —— पैंसे पास होने की वजह से नदी पार नहीं उतरे हैं। तुम पैसे छोड़ सके इसलिए नदी के पार उतरे। पैसा होने से नहीं, पैसा छोड़ने से उतरे हैं नदी के पार। दलील फिर अपनी जगह खड़ी हो गयी। उसने कहा —— मैं सदा कहता हूं, पैसे छोड़ने की हिम्मत होनी चाहिए संन्यासी को। हम पैसे छोड़ सके तो पार आ गये। अगर तुम पकड़ लेते, न छोड़ते तो कैसे पार आते? अब बड़ी मुश्किल हो गयी। वह दूसरा भी हंसा। वे दोनों अपने गुरु के पास गये और मरते हुए गुरु से उन्होंने पूछा कि क्या करें, बड़ी मुश्किल है। और आज तो घटना ऐसी घट गयी है साफ साफ कि पैसे वाले ने कहा कि पैसे थे इसलिए हम उतरे हैं और दूसरा कहता है पैसे छोड़े इसलिए हम उतरे हैं। और हम अपने सिद्धांतों पर अडिग हैं और हमारे दोनों के सिद्धांत ठीक मालूम पड़ते हैं। वह गुरु खूब हंसा, उसने कहा —— तुम दोनों पागल हो। तुम वही पागलपन कर रहे हो, जो आदमी बहुत जमाने से कर रहा है। क्या पागलपन है? उन्होंने पूछा। गुरु ने कहा – तुम एक सत्य के आधे हिस्से को देख रहे हो। यह सच है कि पैसे छोड़ने से ही तुम नाव उतर सके, लेकिन दूसरी बात उतनी ही सच है कि तुम पैसे इसलिए छोड़ सके कि पैसे तुम्हारे पास थे और यह भी सच है कि पैसे पास होने से ही तुम नदी उतरे। लेकिन दूसरी बात भी उतनी ही सच है कि तुम पैसे अपने पास से दूर कर सके इसलिए तुम नदी उतरे। ये दोनों ही बातें सच हैं और ये दोनों बातें ही इकट्ठी जरूर हैं और इनमें विरोध नहीं है।

जीवन के सारे ही तलों पर ऐसे ही विरोध हमने बांट रखे हैं और हर विरोध का मानने वाला अपनी दलील दे सकता है। कठिन नहीं है, क्योंकि उसके पास भी आधी जिन्दगी तो है ही और आधी जिन्दगी कोई कम बात है? बहुत है, दलील के लिए काफी है। इसलिए दलील से कुछ हल नहीं होता, खोजना पड़ेगा पूरी जिन्दगी को। मैं जरूर मृत्यु सिखाता हूं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मैं जीवन का विरोधी हूं। इसका मतलब यह है कि जीवन को जानने का, जीवन को पहचानने का द्वार भी मृत्यु है। इसका मतलब यह है कि **मैं जीवन और मृत्यु को उल्टा नहीं मानता चाहे मैं उसको मृत्यु की कला कहूं, चाहे जीवन की कला कहूं, दोनों बातों का एक ही मतलब होता है।** किस तरफ से हम देखते हैं इस पर निर्भर है। तो आप सोचेंगे कि मैं उसे जीवन की कला क्यों नहीं कहता हूं। बड़ी बात तो यह है कि हम सब जीवन के प्रति अति मोह से भरे हुए हैं। वह अनबैलेंस हो गया है मोह। मैं जीवन की कला

भी कह सकता हूं लेकिन नहीं कहूंगा आपसे, क्योंकि आप जीवन के प्रति मोह से भरे हुए हैं। और जब मैं कहूंगा कि जीवन सीखने आयें तो आप जरूर भागे हुए चले आयेंगे, क्योंकि आप अपने जीवन के मोह को और परिपुष्ट करना चाहेंगे। इसलिए मैं कहता हूं – मृत्यु की कला। और इसलिए कहता हूं ताकि वह अन बैलेंस संतुलन पर आ जाय। आप मरना सीख लें, तो जीवन और मृत्यु में बराबर खड़े हो जायं, दायें और बायें पैर बन जायं, तो आप परम जीवन को उपलब्ध हो जायेंगे। परम जीवन में न जन्म है, न मृत्यु है: लेकिन परम जीवन के दोनों पैर हैं जिनको हम जन्म कहते हैं और मृत्यु कहते हैं। हां, अगर कोई गांव ऐसा हो जहां सारे लोग मरने के मोही हों, जहां कोई आदमी जीना न चाहता हो, तो वहां मैं जाकर मृत्यु की कला की बात नहीं कहूंगा, वहां जाकर मैं कहूंगा कि जीवन की कला सीखो। और उनसे मैं कहूंगा कि ध्यान जीवन का द्वार है, जैसा मैं आपसे कहता हूं ध्यान मृत्यु का द्वार है। उनसे मैं कहूंगा, आओ, जीना सीखो क्योंकि अगर तुम जीना न सीख पाओगे तो मर भी न पाओगे। अगर तुम मरना चाहते हो तो मैं तुम्हें जीवन की कला सिखाता हूं क्योंकि तुम जीना सीख जाओगे तो तुम मरना भी सीख जाओगे। तभी आयेंगे उस गांव के लोग। आपका गांव उल्टा है। आप दूसरे उल्टे गांव के निवासी हैं जहां कोई मरना नहीं चाहता, जहां सब जीना चाहते हैं और जीने को इतने जोर से पकड़ लेना चाहते हैं कि मृत्यु आये ही नहीं। इसलिए मजबूरी में आपसे मरने की बात करनी पड़ती है। ये सवाल मेरे नहीं हैं। आपकी वजह से मृत्यु की कला मैं कह रहा हूं। मैं निरंतर यह बात कहता रहा हूं।

बुद्ध ने एक दिन एक गांव में प्रवेश किया। सुबह ही सुबह है, अभी सूरज निकल-निकल रहा है और एक आदमी उन्हें मिलने आया और उसने कहा, "सुनिये, मैं नास्तिक हूं, मैं ईश्वर को नहीं मानता। आपका क्या ख्याल है, ईश्वर है?" बुद्ध ने कहा, "ईश्वर है। ईश्वर है ही नहीं, सिर्फ ईश्वर ही है और कुछ भी नहीं।" उस आदमी ने कहा, "मैंने तो सुना था आप नास्तिक हैं।" बुद्ध ने कहा, "तुमने गलत सुना होगा। अब तो तुमने मुझे सुन लिया न। मैं महान आस्तिक हूं। ईश्वर है, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।" वह आदमी बेचैन-सा वृक्ष के नीचे खड़ा रह गया। बुद्ध आगे बढ़े। दोपहर को एक आदमी और आया और उस आदमी ने कहा– "मैं आस्तिक हूं, मैं परम आस्तिक हूं, मैं नास्तिकों का दुश्मन हूं। मैं आपसे पूछने आया हूं कि आपका ईश्वर के संबंध में क्या ख्याल है?" बुद्ध ने कहा, "ईश्वर? न है न हो सकता है। ईश्वर है ही नहीं।"

उसने कहा, "क्या कह रहे हैं आप ? मैंने तो सुना था, एक धार्मिक आदमी गांव में आया है, तो मैं पूछने आया था कि ईश्वर है, और आप यह क्या कह रहे हैं ?" वह आदमी भी बेचैन-सा खड़ा रह गया। लेकिन दोनों की बेचैनी ठीक थी। बुद्ध के साथ एक भिक्षु था आनंद, उसके तो प्राण संकट में पड़ गये। उसने दोनों बातें सुन लीं। अब वह बेचैन हुआ। यह तो बड़ी मुश्किल हुई। मामला क्या है ? सुबह तक बात ठीक थी, दोपहर बात मुश्किल हो गयी। बुद्ध को हो क्या गया है ? सुबह कहते हैं महान आस्तिक, दोपहर कहते हैं महान नास्तिक। सोचा, जब सब लोग चले जायेंगे तो पूछ लूंगा। लेकिन सांझ को और मुश्किल हो गयी। एक और आदमी सांझ होते आया और उसने बुद्ध से पूछा, "मुझे कुछ समझ में नहीं आता कि ईश्वर है या नहीं।" वह आदमी अज्ञेयवादी रहा होगा जो कहता है हमें पता नहीं, है या नहीं। और किसी को पता नहीं, और कभी पता नहीं हो सकता। उसने कहा, "कुछ पता ही नहीं, है या नहीं। आप क्या कहते हैं?" बुद्ध ने कहा – "जब तुम्हें भी पता नहीं है, तो मुझे भी पता नहीं है। और अच्छा हो कि इस संबंध में हम चुप रह जायं।" वह आदमी भी हैरान रह गया। उसने कहा, "मैंने तो सुना था कि आपको ज्ञान हो गया है, तो आपको पता हो गया होगा।" बुद्ध ने कहा, "गलत सुना होगा। मैं तो परम अज्ञानी, मुझे कैसा ज्ञान ?" आनंद की मुसीबत समझें आप, अपने को रख लें आनंद की जगह। कैसी मुश्किल में पड़ गया ! रात हो गयी सब लोग चले गये, बुद्ध के पैर पकड़ लिये आनंद ने और कहा – मेरी जान लेंगे आप ? क्या करते हैं ? मेरी फांसी लग गयी। आज दिन भर से मैं इतना बेचैन हूं कि जिन्दगी में कभी भी नहीं रहा। आप कहते क्या हैं ? आप कर क्या रहे हैं ? आप होश में हैं ? आप बोल क्या रहे हैं ? सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ आपने तीन उत्तर दे दिये। बुद्ध ने कहा – तुझे तो मैंने कोई उतर नहीं दिया था, जिन्हें दिया था उन्हें दिया था। तूने सुना क्यों ? दूसरे की बात सुनना उचित है क्या ? आनंदने कहा, और मुश्किल आ गयी। मैं मौजूद था, कान तो बन्द नहीं किये था, सुनायी पड़ गया। आप बोलें और सुनने का मन न हो ? होगा पाप, लेकिन आप बोलें तो सुनने का मन होता है, किसी से भी बोलें। बुद्ध ने कहा – तुझे मैंने कोई उत्तर नहीं दिया था। उसने कहा – न दिया होगा, लेकिन मैं मुश्किल में पड़ गया हूं। मुझे उत्तर दें, अभी दे दें कि सच क्या है और आपने ऐसी तीन बातें क्यों कहीं ? बुद्ध ने कहा – तीनों को संतुलन पर लाना था। सुबह जो आदमी आया था वह नास्तिक था और नास्तिक अधूरा है, क्योंकि जिन्दगी विरोध से मिलकर बनी है। यह समझ लेना, आप जो सच में धार्मिक आदमी हैं उसमें दोनों

ही बातें होती हैं। वह एक तरफ से नास्तिक भी होता है, दूसरी तरफ से आस्तिक भी होता है। उसके दोनों ही पहलू होते हैं और उन दोनों के विरोध के बीच वह सामंजस्य बना लेता है। उसी सामंजस्य में धर्म है। और जो सिर्फ आस्तिक है वह अभी अधूरा धार्मिक है। अभी जिन्दगी का संतुलन आया नहीं, अभी बैलेंस आया नहीं। तो बुद्ध ने कहा – उसे बैलेंस में लाना था। उसका एक पलड़ा बहुत भारी हो गया था इसलिए दूसरे पलड़े पर मुझे पत्थर रख देने पड़े और फिर मैं उसे बेचैन भी कर देना चाहता था, क्योंकि वह निश्चित हो गया था कि नहीं है। उसके निश्चय को डिगा देना जरूरी था, क्योंकि **जो निश्चित हो जाता है वह समाप्त हो जाता है। यात्रा जारी रहनी चाहिए जिज्ञासा की।** दोपहर जो आदमी आया था वह आस्तिक था, तो उससे मुझे कहना पड़ा कि मैं नास्तिक हूं, क्योंकि उसका पलड़ा भी बहुत भारी हो गया था, वह भी असंतुलित हो गया था। जिन्दगी है संतुलन। बुद्ध ने कहा – **संतुलन को जो पा लेता है वह सत्य को पा लेता है।** तो आपसे जो मैं कह रहा हूं कि मृत्यु की कला सीखनी चाहिए वह इसलिए कहा रहा हूं कि जीवन का पलड़ा बहुत भारी हो गया है। जीवन के पलड़े पर आप बहुत जोर से बैठ गये हैं। उसकी वजह से सब पत्थर हो गया है, जड़ हो गया है, संतुलन खो गया है। इधर मृत्यु को भी आमंत्रित करें, उसे भी बुलायें कि तुम भी आओ, मेहमान हो जाओ, हम थोड़ा-थोड़ा रहेंगे और **जिस दिन जीवन मृत्यु के साथ रहने को राजी होता है उस दिन जीवन परम जीवन बन जाता है।** जिस दिन मृत्यु को गले लगा लेता है, भेंट कर लेता है, आलिंगन कर लेता है मृत्यु को, उस दिन बात खत्म हो गयी। मृत्यु का दंश गया क्योंकि मृत्यु का जो दंश था वह था मृत्यु से भागने में, भयभीत होने में। और जब कोई आकर मृत्यु को गले लगा लेता है, तो मृत्यु हार जाती है; क्योंकि मृत्यु को गले लगाने वाला मृत्युंजय हो जाता है। उसका मृत्यु अब कुछ भी नहीं कर सकती। अब क्या करेगी मृत्यु, वह खुद ही मिटने को तैयार हो गया है!

दो तरह के लोग हैं, एक वे जिन्हें मृत्यु खोजती है और एक वे जो मृत्यु को खोजते हैं। मृत्यु उन्हें खोजती है जो मृत्यु से भागते हैं। और एक वे हैं जो मृत्यु को खोजते हैं, मृत्यु उनसे भागती है, और वे अनंतकाल में खोज-फिर के आ जाते हैं और मृत्यु को नहीं पाते। किस तरह के आदमी जीतते हैं? मृत्यु से भागे हुए या मृत्यु को आलिंगन कर लेने वाले। मृत्यु से भागने वाला हारता ही जायगा। उसका सारा जीवन पराजय का जीवन होगा। तो मृत्यु को भेंट लेने वाला जीत जायगा। उसी क्षण उसके जीवन में पराजय

मिट जायगी। उसका जीवन विजय की यात्रा बन जायगा।

मैं मृत्यु की कला ही सिखा रहा हूं ताकि जीवन उपलब्ध हो सके। अंधरे में जो जीना सीख लेता है और पूरे अंधेरे को जो स्वीकार कर लेता है, क्या आपको यह रहस्य पता है, उसके लिए उसी दिन अंधेरा प्रकाश हो जाता है। जो जहर को पी लेता है प्रेम से, आनन्द से अमृत की भांति, क्या आपको पता है, उसके लिए जहर अमृत हो जाता है। अगर नहीं पता है, तो खोज करनी चाहिए। लेकिन जीवन के गहरे से गहरे सत्यों में यह है कि जिसने जहर को वरण कर लिया प्रेम से, उसके लिए जहर अमृत हो जाता है और जिसने अंधकार को प्रेम से छाती लगा लिया, वह अचानक पाता है कि अंधकार आलोक हो गया, और जिसने दुख को भेंट कर लिया उसने पाया कि दुख है ही नहीं है – सुख ही शेष रह जाता है। जो अशांति में भी राजी हो गया, उसके लिए शांति के द्वार खुल जाते हैं। अब यह उल्टा लगता है। लेकिन ध्यान रहे, जो आदमी कहता है कि मुझे शांत होना है, वह आदमी कभी शांत नहीं हो सकेगा, क्योंकि मुझे शांत होना है, यह भी अशांति की तलाश है। इसलिए आदमी वैसे अशांत है, और कुछ अशांत ऐसे हैं कि वे एक नयी अशांति भी पाल लेते हैं। वे कहते हैं – हमें शांत होना है।

एक आदमी मेरे पास आया और उसने मुझे कहा कि मैं पांडिचेरी हो आया, रमण आश्रम गया, रामकृष्ण आश्रम गया। सब पाखंड है, कहीं भी कुछ भी नहीं है। मुझे शांति चाहिए, कहीं नहीं मिलती है। मैं दो साल से भटक रहा हूं। पांडिचेरी में मुझे किसी ने आपका नाम ले लिया, तो मैं सीधा वहीं से चला आ रहा हूं। मुझे शांति चाहिए। मैंने कहा – तुम सीधे उठो और दरवाजे के बाहर हो जाओ, नहीं तो मैं भी पाखंडी सिद्ध हो जाऊंगा। उसने कहा —क्या मतलब ? मैंने कहा – बस अब तुम बाहर जाओ। तुम अब लौटकर इस तरफ देखना ही मत। इसके पहले कि मैं पाखंडी सिद्ध हो जाऊं मुझे अपने को बचा लेना उचित है। उसने कहा– लेकिन मैं शांत होने आया हूं। मैंने कहा—तुम बिल्कुल ही चले जाओ, क्योंकि मैं तुमसे यह पूछता हूं कि तुम अशांत होने किसके पास पूछने गये थे ? किस गुरु से तुमने अशांत होने की दीक्षा ली है ? किस आश्रम में गये जहां तुमने अशांत का पाठ सीखा ? तब उसने कहा – मैं कहीं नहीं गया। तो मैंने कहा – तुम तो इतने होशियार आदमी हो कि अशांति तक पैदा कर लेते हो, तो मैं तुम्हें और क्या बताऊंगा ! जिस ढंग से तुमने अशांति पैदा की है उससे उल्टे ढंग लौट जाओ और शांत हो जाओगे। मुझसे क्या लेना-देना है। भल के किसी से मत कहना कि मेरे पास भी गये थे, क्योंकि मुझसे संबंध ही क्या है इस बात का?

वह आदमी बोला – आप कुछ भी करके मुझे तो शांत होने का रास्ता बतलाइए। मैंने कहा – तुम और अशांत होने का रास्ता खोज रहे हो ? शांत होने का सिर्फ एक ही रास्ता रहा है दुनिया में और वह यह कि जो अपनी अशांति को भी स्वीकार कर ले। जो उसकी पूर्णता को स्वीकार लेता है वह कहता है – आ जाओ, रहो, तुम भी मेहमान बन जाओ हमारे घर में। उसी दिन अचानक पाता है कि अशांति विदा हो गयी **क्योंकि अशांति विदा होती है वृत्ति से। जो अशांति को ही स्वीकार करता है उसकी वृत्ति शांत हो गयी क्योंकि वह अशांति तक को स्वीकार कर लेता है।** यह जो वृत्ति की शांति हो गयी तो अशांति वहां कैसे टिकेगी ? अशांति पैदा होती है अस्वीकार की वृत्ति से। फिर चाहे वह अस्वीकार अशांति का ही क्यों न हो। जो कहता है, अशांति को स्वीकार नहीं करेंगे, वह अशांत होता चला जायगा, क्योंकि स्वीकार न करना ही तो अशांति की जड़ है। वह कहता है हम अशांति स्वीकार न करेंगे, हम दुख स्वीकार न कर सकेंगे, हम मौत स्वीकार नहीं करते, हम अंधेरा स्वीकार नहीं करते। मत करो तुम स्वीकार, जिसको तुम स्वीकार नहीं करोगे उससे ही घिरते चले जाओगे। देखो उसको स्वीकार करके जिसे कोई स्वीकार नहीं करता, और अचानक तुम पाओगे कि जिसे शत्रु जाना था, वह मित्र हो गया। शत्रु को कोई घर में मेहमान की तरह ठहरा ले, तो मित्र हो जाने के अतिरिक्त उपाय भी क्या है ? इसलिए मैंने इन दिनों में ये बातें कहीं कि मृत्यु पर विजय की आकांक्षा से आप आये थे और आपने सोचा होगा कि शायद मैं कोई तरकीब बताऊंगा कि आप कभी न मर सको।

एक मित्र ने तो पत्र भी लिखा कि 'क्या वहां काया-कल्प किया जायगा ? कोई पारस-प्रयोग बताया जायगा ? तो हम खर्च करके आयें भी।' हो सकता है आप भी उसी ख्याल में आये हों, लेकिन आप बड़े बेचैन हुए होंगे, क्योंकि मैं इधर मृत्यु की कला सिखा रहा हूं। मैं कह रहा हूं मर जाओ। मरना सीखो, भाग के कहां जाओगे, मृत्यु को अंगीकार कर लो। ध्यान रहे, मैं मृत्यु की विजय का सूत्र ही आपको दे रहा हूं। मृत्यु की विजय का सूत्र काया-कल्प नहीं है। कितनी ही काया–कल्प करो, मरना ही पड़ेगा। काया मरेगी ही। हां, काया–कल्प से इतना ही हो सकता है कि मौत लंबाई जा सकती है यानी और परेशानी लंबी हो जायेगी। सत्तर साल में मर जायेंगे, तो सात सौ साल में मर जायेंगे। सत्तर साल में जो दुख विदा हो जाता था, वह सात सौ साल तक चलेगा, और क्या होगा–सत्तर साल की परेशानी सात सौ साल तक चलेगी। सत्तर साल के झगड़े सात सौ साल तक चलेंगे। सत्तर साल की मुसीबत सात सौ साल तक फैल जायेगी। आपको

पता नहीं इस बात का कि अगर सच में ही आपको मिल जाय कोई सात सौ साल करने वाला और कहे कि लो यह दवा दे देता हूं, जिओगे सात सौ साल, तो आप कहोगे कि जरा ठहर जाओ, मैं विचार करूंगा, और मैं नहीं समझता कि आपमें से कोई भी सात सौ साल वाली दवा लेने को राजी होगा। क्योंकि इसका मतलब क्या होगा ? इसका मतलब यही होता है कि जो मैं था वह नहीं रहूंगा और इसी मैं को सात सौ साल जीना पड़ेगा तो बहुत महंगा पड़ जायगा। बहुत भारी पड़ जायगा। अगर किसी दिन वैज्ञानिकों ने ऐसी कोई खोज कर ली कि आदमी अनंत काल तक जी सके और ऐसी खोज शायद हो सकेगी, इसमें कोई कठिनाई नहीं है, तो उस दिन ध्यान रहे, जिस दिन अनंत काल तक जीने की व्यवस्था हो जायगी उस दिन आदमी उन गुरुओं की तलाश करेगा, जो ऐसी तरकीबें बता दें जिनसे जल्दी आदमी मर जाय। जैसे अभी काया-कल्प करने वाले गुरुओं की तलाश चलती है, वैसे ही तब तलाश चलेगी कि कोई गुप्त रहस्य बता दे कि हम किस तरकीब से मर जायें और वैज्ञानिक हमें बचा न पायें। सरकार को किस तरह धोखा दे दें और खिसक जाएं, क्योंकि हमको ख्याल ही नहीं है कि लंबाई से जिन्दगी का कोई मतलब नहीं होता। **जिन्दगी का मतलब होता है जीने से। और कोई आदमी एक क्षण में इतना जी सकता है कि कोई आदमी अनंत जन्मों में न जी सके।** वह जीने की बात है और जी वही सकता है जिसका मृत्यु का भय चला गया है, नहीं तो जियेगा कैसे ! भय की वजह से कंपता रहता है। खड़ा ही नहीं हो पाता, भागता ही रहता है। क्या आपको ख्याल में है यह बात कि दुनिया में निरंतर स्पीड बढ़ती चली जा रही है ! हर चीज में गति है। बैलगाड़ी से राकेट बड़ा अच्छा है एक लिहाज से। उससे कहीं भी हम जल्दी से पहुंच सकते हैं। लेकिन स्पीड का इतना आग्रह क्यों है ? यह आपको ख्याल में भी न होगा कि सारी गति की चेष्टा मनुष्य की, वह जहां है वहां से भागने की चेष्टा है। वह जहां है इतना डरा हुआ है, इतना घबराया हुआ है कि वह कहता है, कहीं भी हों, इससे अच्छे होंगे। भागो, जाओ कहीं। सारे योरोप और अमरीका में छुट्टियों का दिन बहुत उपद्रव का दिन हो गया है। छुट्टी के दिन जितना लोग थक जाते हैं उतना कभी नहीं थकते हैं; क्योंकि भागते हैं अपनी-अपनी गाड़ियां लेकर---पचास मील, सौ मील, दो सौ मील दूर। किसी पिकनिक स्पाट पर, किसी पहाड़ पर, किसी हिल स्टेशन पर, किसी समुद्र के तट पर। लेकिन पूछें, पहुंचना कहां है ? एक बात पक्की है कि जहां थे वहां से निकल जायें। घर से निकल जायें। पत्नी से भाग जायें। दूकान से भाग जायें। आदमी नहीं जी पा रहा है, इसलिए इतनी भाग, इतनी दौड़

पैदा हुई है। और तेज करते जाओ वासना को, ताकि भागने में गति आ जाय। लेकिन पूछें – कि जा कहा रहे हैं ? कहां पहुंचने का इरादा है ? तो वह कहेगा, अभी फुर्सत नहीं है बताने की, जल्दी पहुंचना है। हमें चांद पर पहुंचना है, मंगल पर पहुंचना है। हम भी जिन्दगी भर भाग रहे हैं हर वक्त। किससे भाग रहे हैं, किस चीज से भाग रहे है, डर क्या है ? एक डर है, कि जीवन को जी नहीं पाते और मौत का डर है कि मौत न आ जाय। ये दोनों बातें जुड़ी हुई हैं। जो मौत से डरा है वह जीवन को नहीं जी पायेगा, क्योंकि मौत कंपा देती है। क्या रास्ता है? आप मुझसे पूछते हैं, रास्ता क्या है ? मैं कहता हूं – मौत को स्वीकार कर लो। मौत से कहो, आ जाओ, जियेंगे पीछे, पहले तुम आ जाओ, तुमसे पहले निपट लें। यह बात खत्म हो गयी, तो फिर फुर्सत से जी लें, तुम्हें पहले ले लें, फिर सुविधा में बैठकर जियेंगे। जो आदमी मौत को इस भांति ले लेता है, ध्यान उसी के लिए आमंत्रण है। जो इस भांति लेता है, वह तत्काल खड़ा हो जाता है। उसकी स्पीड, वह भागने की तेजी विलीन हो जाती है।

कभी आपने देखा है, अगर आप साइकिल चलाते हैं, तो जिस दिन आप क्रोध में हों पैडल जोर से चलाते हैं। कार चलाते हैं, तो जिस दिन क्रोध में हों उस दिन एक्सीलेटर जोर से दबता है। कभी ख्याल किया है आपने ? मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं, जो ऐक्सीडेंट होते हैं वे कार की खराबी की वजह से नहीं, वह जो कार का एक्सीलेटर दबा रहा है उस आदमी के भीतर कुछ गड़बड़ है, वह तेजी से दबा रहा है। दांत भींचे हुए है। किसी न किसी तरह वह चाह रहा है कि ऐक्सीडेंट हो जाय। वह इच्छा से भरा हुआ है कि हो जाय, कहीं टकरा जाय जोर से। क्योंकि जिन्दगी बेकार मालूम पड़ रही है। इससे रस आ जायेगा कम से कम टकराने का। उतनी देर थोड़ा कंपन होगा, थोड़ा अच्छा लगेगा।

आज योरोप और अमरीका में अनेक हत्यारों ने अदालतों में यह बयान दिये हैं कि उस आदमी से हमारा कोई झगड़ा न था, अखबार में हम अपना नाम देखना चाहते थे, और कोई रास्ता नहीं था नाम छपने का। साधु का तो नाम अब छपता नहीं, अब तो सिर्फ हत्यारों का छपता है। हत्यारे भी दो तरह के हैं– एक निजी, अलग-अलग व्यक्तिगत हत्या करने वाले, उनके नाम छपते हैं। और सामूहिक हत्या करने वाले राजनीतिज्ञ हैं, उनके नाम छपते हैं। बाकी तो किसी का छपता नहीं। साधु हो भी जाओ, तब भी कोई नाम छपने वाला नहीं है। तो वह एक आदमी को छुरा भोंक देता है तो अखबार में कम से कम पहली हेडिंग में ऊपर छपता तो है कि फलां आदमी ने फलां आदमी को छुरा भोंक दिया। वह कहता है

अदालत में——मेरी किसी से दुश्मनी न थी। उस आदमी को मैंने कभी देखा भी न था। सिर्फ उसकी पीठ देखी थी और छुरा भोंक दिया। और जब छुरा भोंका और खून का फव्वारा बढ़ा, तो मुझको भी लगा कि मैंने भी जिन्दगी बेकार नहीं गंवा दी, कुछ तो किया है जिसकी चर्चा होगी। चर्चा हो रही है– अखबार चर्चा कर रहे हैं, अदालतें चर्चा कर रही हैं, बड़े-बड़े मजिस्ट्रेट काले चोगे पहनकर, बड़े-बड़े वकील काले चोगे पहनकर बड़ी गंभीरता से कार्य कर रहे हैं। मैंने भी कुछ किया है, कोई साधारण आदमी नहीं हूं।

मौत से भागा हुआ, डरा हुआ आदमी इतना निराश, उदास, इतना ऊब गया है कि वह कुछ भी कर रहा है, लेकिन एक काम नहीं कर रहा है कि वह मौत को स्वीकार कर ले कि आओ। और जैसे ही कोई मृत्यु को स्वीकार लेता है उसके जीवन में नया द्वार खुल जाता है, जहां प्रभु का निवास है। परमात्मा के मंदिर पर लिखा है 'मरो' और परमात्मा के मंदिर में जीवन की रसधार बह रही है। उस 'मरो' के साइनबोर्ड को देखकर लोग लौट जाते हैं। भीतर कोई जाता नहीं। बड़ी कुशलता की है, बड़ी होशियारी की है, नहीं तो भीतर बहुत भीड़ हो जाय और जीना मुश्किल हो जाय। तो जीवन का जहां मंदिर है, वहां लिखा है बाहर 'मरो'। वे जो डर गये, वे भाग आते हैं। इसलिए मैंने कहा कि मरना सीखना पड़ता है। और जीवन का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि कैसे हम मरने को सीख लें और स्वीकार कर लें। रोज-रोज जो अतीत है वह मर जाय, हम रोज ही मर जायं, कल की याद मर जाय, लेकिन हम नहीं मरने देते उसको। सत्तर साल का बूढ़ा आदमी हो गया, उसका बचपन अभी तक नहीं मरा। वह बैठकर देखता है कि वे दिन ही और थे, वह बात ही और थी, बड़ा आनंद था। अभी बचपन मरा नहीं उसका। अभी वह इरादे वही कर रहा है कि वही हो जाय। बूढ़े हो गये हैं, बिस्तर पर लगे हुए हैं लेकिन उनकी जवानी नहीं मरी है, वह विचार वही कर रहे हैं। जवानी में जो अभिनेत्रियां उन्हें दिखायी पड़ी होंगी, हालांकि वे कोई न रहीं, वह उनको देख रहे हैं। चित्र चल रहे हैं। मरा नहीं कुछ। कल मरता ही नहीं हमारा। हम मरने की हिम्मत ही नहीं जुटाते है। हम किसी चीज को मरने नहीं देते। बस वह सब इकट्ठा हो जाता है। सब मरा हुआ, जो मर चुका है। हम मरने नहीं देते, बोझ की तरह इकट्ठा कर लेते हैं। उसके बोझ में हम जी नहीं पाते। तो मरन की कला का एक सूत्र यह भी है कि वह जो मर गया उसे मर जाने दें।

जीसस एक झील के पास से गुजर रहे थे। सुबह है, सूरज निकलने को है,

अभी-अभी लाली फैली है। एक मछुवे ने जाल फेंका है मछली पकड़ने को। मछलियां पकड़कर जाल खींचता है। जीसस ने उसके कंधे पर हाथ रखा और कहा, "मेरे दोस्त, क्या पूरी जिन्दगी मछलियां ही पकड़ते रहोगे ?" सवाल तो उसके मन भी कई बार यह उठा था कि क्या पूरी जिन्दगी मछलियां ही पकड़ता रहूंगा। किस के मन में नहीं उठता ? हां, मछलियां अलग-अलग हैं, जाल अलग-अलग हैं। लेकिन सवाल तो उठता ही है कि क्या जिन्दगी भर मछलियां ही पकड़ते रहें ? उसने देखा कि कौन आदमी है जो मेरा ही सवाल उठाता है। पीछे जीसस को देखा, उनकी हंसती हुई शांत आंखें देखीं, उनका व्यक्तित्व देखा। उसने कहा – और कोई उपाय भी तो नहीं है, और कोई सरोवर कहां है और मछलियां कहां हैं और जाल कहां फेंकू ? पूछता तो मैं भी हूं कि क्या जिन्दगी भर मछलियां ही पकड़ता रहूंगा ? फिर जीसस ने कहा – मैं भी एक मछुवा हूं लेकिन किसी अन्य सागर पर जाल फेंकता हूं। इरादा हो तो मेरे पीछे आ जाओ। लेकिन ध्यान रहे, नया जाल वही फेंक सकता है जो पुराना जाल फेंकने की हिम्मत रखता हो। छोड़ दो पुराने जाल को वहीं। मछुवा सच में हिम्मतवर रहा होगा। कम लोग हिम्मतवर होते हैं। उसने जाल को वहीं फेंक दिया जिसमें मछलियां भरी थीं। मन तो किया होगा कि खींच लो, कम से कम इस जाल को तो खींच लो। लेकिन जीसस ने कहा – वही नये जाल को फेंक सकते हैं नये सागर में, जो पुराने जाल को छोड़ने की हिम्मत रखते हैं। उसने जाल वहीं छोड़ दिया। बोला – कहां चलूं ? जीसस ने कहा – आदमी हिम्मत के मालूम होते हो। कहीं जा सकते हो। आओ। वे गांव के बाहर निकल गये हैं। तब एक आदमी भागता हुआ आया और उस मछुवे को पकड़कर कहा– पागल, तू कहां जा रहा है ? तेरे बाप की मौत हो गयी है, जो बीमार थे। तू गया कहां था ? हम गये थे तालाब पर। पड़ा हुआ जाल देखा है वहां। तू कहां चला जा रहा है ? तो उसने जीसस से कहा – क्षमा करें। दो-चार दिन की मुझे छुट्टी दे दें, मैं अपने पिता का अंतिम संस्कार कर आऊं, फिर मैं लौट आऊंगा। जीसस ने जो वचन कहा, बड़ा अद्‌भुत है। उन्होंने कहा – पागल, 'लेट दी डेड, बरी दी डेड'। वह जो गांव के मुर्दे हैं वे दफना लेंगे। तुझे क्या जाने की जरूरत है ? तू चल। अब जो मर गया है, मर ही गया, अब दफनाने की भी क्या जरूरत है ? यानी वह और तरकीबें हैं उसको और जिलाये रखने की। अब जो मर गया वह मर गया, फिर गांव में काफी मुर्दे हैं वे दफना लेंगे, तू चल। एक क्षण वह रुका तो जीसस ने कहा––मैने गलत समझा था कि तू पुराने जाल छोड़ सकता है। एक क्षण वह रुका, फिर जीसस के पीछे चल पड़ा। जीसस ने कहा – तू

आदमी हिम्मत का है। तू मुर्दे को छोड़ सकता है तो जीवन को पा सकता है।

असल में वह जो पीछे मर गया है उसे छोड़ें। ध्यान में आप निरंतर बैठते हैं लेकिन मुझसे आप आकर कहते हैं कि ध्यान होता नहीं है, विचार आ जाते हैं। विचार आ नहीं जाते। आपने उनको छोड़ा है क्या कभी? उनको आप निरंतर पकड़े हैं. फिर उन विचारों का क्या कसूर है? अगर कभी आदमी एक कुत्ते को अपने घर में बांधे रहे और रोज खाना खिलाये और फिर एक दिन अचानक घर के बाहर निकालने लगे और कुत्ता चारों तरफ से घूमकर वापस आने लगे, तो कुत्ते का क्या कसूर है? अचानक आप ध्यान करने लगें और कुत्ते से कहें हटो यहां से। कल तक उसको रोटी दी, आज सुबह तक रोटी दी, चूमा-पुचकारा, उसकी पूंछ हिलाने से आनंदित हुए, घंटी बांधी, गले में पट्टा बांधा, घर में रखा। अचानक आपका विचार हो गया कि ध्यान करें। उस कुत्ते को क्या पता? वह बिचारा घूमकर लौट आता है, सोचता है, कोई खेल हो रहा होगा। और जब आप उसको भगाते हैं, तो वह और खेल में आ जाता है। वह और रस लेने लगता है कि कोई मामला जरूर है। मालिक आज कुछ बड़े आनंद में मालूम पड़ रहे हैं। तब मुझसे आप आकर कहते हैं कि विचार नहीं जाते हैं। जायेंगे कैसे? उन्हीं विचारों को पोसा है आपने, खून पिलाया है अपना। उनको बांधे फिरते हैं, उनके गले पर पट्टे बांधे हुए हैं अपने-अपने नाम के। आदमी से जरा कह दो कि यह जो तुम कह रहे हो, गलत है। वह कहता है, मेरा विचार और गलत? मेरा विचार कभी गलत नहीं हो सकता। जिस पर आप पट्टा बांधे हुए हैं अपना वह विचार लौटकर आ जाता है। उसे क्या पता है कि आप ध्यान कर रहे हैं। अब आप कहते हैं हटो, भागो। ऐसे वे नहीं भागेंगे। विचार को हम पोस रहे हैं। अतीत में विचार को पालते चले जा रहे हैं। अचानक एक दिन आप कहते हैं – हटो। एक दिन में नहीं हट जायगा। उसका पोसना बन्द करना पड़ेगा, उसका पालना बन्द करना पड़ेगा। ध्यान रहे, अगर विचार छोड़ रहे हो तो 'मेरा' विचार कहना छोड़ दो; क्योंकि जहां 'मेरा' है वहां कैसे छुटेगा? अगर विचार छोड़ना हो तो विचार में रस लेना बन्द कर देना। अगर रस लेंगे तो विचार को क्या पता कि आप बदल गये और रस नहीं लेते। तो विचार अतीत की हमारी सारी स्मृति है। उसको पाला है, उसको हम पकड़े हैं, उसको हम मरने नहीं देते हैं। उसको मरने दें, वह जो मर गया है। उसको मरा हुआ हो जाने दें। उसको अब जिन्दा रखने की कोशिश मत करो। लेकिन हम उसको जिन्दा रखे हुए हैं। कल की दोस्ती जिन्दा है, कल की दुश्मनी भी जिन्दा है। न केवल जिन्दा है, बल्कि अगर कल का दोस्त आज रास्ते पर नमस्कार न करे, तो हम कहते हैं –

रुको, क्या बात है ? कल तक तुमने नमस्कार किये थे। अगर पति आज सुबह पत्नी को प्रेम से न देखे, तो वह कहती है – क्या मामला है ? तीस साल तक तुमने मुझे प्रेम से देखा है। अतीत को इतने जोर से हम पकड़े हुए हैं कि हम कहते हैं, वैसे ही रहो जैसे कल थे। दूसरे से भी यही मांग करते हैं कि जैसे कल रहे वैसे ही रहो। खुद से भी यही मांग करते हैं कि जैसे कल थे वैसे रहेंगे। और सबको भरोसा दिलाये रखते हैं कि घबराना मत मैं वही का वही रहूंगा। तो फिर मुर्दा कैसे मरेगा ? मुर्दा और बोझिल होता चला जाता है। मरने की कला का यह भी हिस्सा है। यह सूत्र भी अगर ध्यान में रख लेंगे कि अगर मरने की कला सीखनी है तो जो मर जाता है उसे मर जाने दो। जो अतीत हो गया, है उसे अतीत हो जाने दो। अब वह कहीं भी नहीं है, उसे जाने दो। अब स्मृति में भी उसे सम्हालकर रखने की कोई जरूरत नहीं है। विदा कर दें, विदा हो जाने दें। कल कल हो चुका, वह अब नहीं है।

एक और छोटा-सा प्रश्न है। एक मित्र ने पूछा, भ्रम से भरा हुआ चित्त, बहुत उलझा हुआ कंफ्यूज्ड माइंड क्या है ? क्लेरिटी आफ माइंड क्या है ? और मन की सफाई, ताजगी और स्वच्छ हो जाना क्या है ?

इसमें थोड़ा समझना जरूरी है, क्योंकि यह ध्यान के लिए उपयोगी होगा और मरने की कला में भी उपयोगी होगा। मित्र का पूछना कीमती है। वह यह पूछते है कि यह उलझा हुआ मन क्या है ? लेकिन इसमें एक भूल हो जाती है। हम कहते हैं उलझा हुआ मन, अशांत मन, कंफ्यूज्ड माइंड। यहां भूल हो जाती है। भूल क्या हो जाती है ? भूल यह हो जाती है कि हम दो शब्दों का उपयोग कर रहे हैं। उलझा हुआ मन। सच बात ऐसी है कि उलझा हुआ मन नहीं होता। उलझे हुए मन की जो स्थिति है उसका नाम मन है। कंफ्यूज्ड माइंड नहीं होता। माइंड कंफ्यूज्ड जैसा होता ही नहीं। अशांत मन नहीं होता है। अशांत का नाम ही मन है। और जब अशांति नही रह जाती, तो ऐसा नहीं कि मन शांत हो जाता है। ऐसा है कि मन रह ही नहीं जाता। समझ लें, तूफान आया हुआ है, समुद्र पर अशांति है, तो आप कहते हैं कि अशांत तूफान। आप कृपा करके इतना ही कहें कि तूफान है। फिर तूफान चला गया, तो क्या आप यह कहते हैं कि अब शांत तूफान चल रहा है ? आप कहते हैं कि अब तूफान नहीं है। मन को समझने में भी ध्यान रख लें कि मन अशांति का ही नाम है और जब शांति आ जाती है तो ऐसा नहीं है कि शांत मन रह जाता है, मन रह ही नहीं जाता। नो माइंड, अमन की स्थिति आ जाती है। और जब मन नहीं रह जाता है तब जो रह जाता है उसका

नाम आत्मा है। जब तूफान नहीं रह जाता है तब भी सागर रह जाता है। जब तूफान मिट जाता है तब सागर रह जाता है। जब अशांत मन, कंफ्यूजन मिट जाता है तो जो शेष रह जाता है वह आत्मा है। मन कोई चीज नहीं है। मन केवल अव्यवस्था का नाम है, अराजकता का नाम है। मन कोई फैकल्टी नहीं है, मन कोई वस्तु नहीं है। शरीर एक बस्ती है और आत्मा एक बस्ती है और मन, इन दोनों के बीच में अशांति का जो संबंध है, उसका नाम है। और जब शांति हो जाती है तो शरीर रह जाता है, आत्मा रह जाती है लेकिन मन नहीं रह जाता। शांत मन जैसी कोई चीज नहीं है। लेकिन यह गल्ती इसलिए हो गयी है कि हमारी भाषा गलत हैं, हम कहते हैं अस्वस्थ शरीर, स्वस्थ शरीर। वह ठीक है। अस्वस्थ शरीर भी होता है, स्वस्थ शरीर भी होता है। अस्वास्थ्य मिट जाता है तो स्वस्थ शरीर शेष रह जाता है, लेकिन मन के संबंध में यह यह बात सच नहीं है। स्वस्थ मन, अस्वस्थ मन ऐसी बात नहीं होती। मन मात्र अस्वस्थ होता है। मन का होना एक कंफ्यूज़न है। मन का होना ही अस्वास्थ्य है, बीमारी है। इसलिए यह मत पूछें कि कंफ्यूज्ड माइंड को, उलझे हुए मन को हम शांत कैसे बनायें? यह पूछें कि इस मन से हम मुक्त कैसे हो जायं? यह मन मर कैसे जाय? इस मन को हम समाप्त कैसे कर दें? विदा कर कैसे कर? यह मन न रह जाय ऐसा कैसे हो जाय?

ध्यान मन को समाप्त कर देने का, विदा कर देने का उपाय है। ध्यान का मतलब है मन के बाहर चले जाना, ध्यान का मतलब है मन से हट जाना। ध्यान का मतलब है मन का न रह जाना, ध्यान का मतलब है जहां हम उलझे हैं उस उलझाव से हट जाना। उस उलझाव के हटने से वह उलझाव शांत हो जाता है; क्योंकि वह हमारी मौजूदगी से ही उलझाव बनता है। अगर हम वहां से हट जाते हैं तो वह विदा हो जाता है। अब समझ लें: दो आदमी लड़ रहे हैं। आप मुझसे लड़ने आये हैं और लड़ाई चल रही है। अगर मैं उस लड़ाई से हट जाऊं, तो लड़ाई कैसे चलती रहेगी? वह विदा हो जायेगी, क्योंकि वह मेरी मौजूदगी से ही चल सकती है। मन के तल पर हम खड़े हुए हैं। जहां मन का सारा उपद्रव चल रहा है हम वहीं खड़े हुए हैं, वहां से हम जाना भी नहीं चाहते और हम कहते हैं कि इसको शांत करेंगे। यह शांत नहीं होने वाला है। आप कृपा करके हट जायं, बस। आपके हटते ही शांत हो जायगा। तो ध्यान जो है वह मन को शांत करने की विधि नहीं है, मन से हट जाने की, जहां अशांति की लहरें बह रही हैं वहां से सरक जाने की, वहां से पीछे ले जाने की व्यवस्था है।

एक प्रश्न और एक मित्र ने पूछा है वह भी इससे संबंधित है। उसे समझ

लेना उचित है। उन्होंने पूछा है कि 'टु बी इन मेडिटेशन एण्ड टु डू मेडीटेशन', ध्यान करना और ध्यान में होना—-इसमें क्या फर्क है ?

वही फर्क है जो मैं समझा रहा हूं। अगर कोई आदमी ध्यान कर रहा है तो वह अशांत मन को शांत करने की कोशिश कर रहा है। वह क्या करेगा : वह यह करेगा कि मन को शांत करने की कोशिश करेगा। और कोई आदमी अगर ध्यान में है तो वह मन को शांत करने की कोशिश नहीं कर रहा है, वह मन से सरका ही जा रहा है। बाहर धूप लग रही है तो एक आदमी धूप में अगर छाता तानने का उपाय कर रहा है और बाहर धूप में ही छाते ताने जा सकते हैं, इसमें कोई खराबी नहीं है। और कोई छाया में हो सकता है लेकिन मन के छाते ताने हुए है क्योंकि मन में सिर्फ विचार के ही छाते तान सकते हैं। यानी वह ऐसा है जैसे एक आदमी धूप में खड़ा है और आंख बन्द करके सोच रहा है कि ऊपर एक छाता है और धूप अब नहीं लग रही है। लेकिन धूप लगती रहेगी। यह आदमी धूप को शांत करने की कोशिश कर रहा है। यह ध्यान करने की कोशिश कर रहा है। एक दूसरा आदमी है, बाहर धूप आ गयी है, उठकर घर के भीतर चला गया है। जाकर घर में विश्राम करने लगा। यह आदमी धूप को शांत करने की कोशिश नहीं कर रहा है। धूप से हटा जा रहा है। ध्यान करने का मतलब प्रयास है मन को बदलने का। और ध्यान में होने का मतलब बदलने का प्रयास नहीं, चुपचाप अपने में सरक जाना है। इन दोनों के फर्क को ख्याल में ले लेना चाहिए। क्योंकि अगर आपने ध्यान करने की कोशिश की तो ध्यान में आप कभी न जा पायेंगे। कोशिश अगर की, चेष्टा अगर की, अगर आप वैठ गये अकड़ कर और आपने कहा आज कुछ भी हो जाय, मन को शांत करके रहेंगे। कौन कह रहा है, यह कौन करेगा ? आप ही। आप अशांत हैं और अब आप शांत करेंगे, तो और एक मुसीबत आपने बांधी अपने चारों तरफ। अब आप अकड़े हुए बैठे हैं। आप कहते हैं, कुछ भी हो जाय। अब जितना आप अकड़ते जाते हैं उतनी परेशानी में पड़ जाते हैं, उतने 'टेंस' होते चले जाते हैं। ध्यान है रिलेक्सेशन—-कुछ न करें, शिथिल हो जायं।

समझ लें, एक छोटे से सूत्र से मैं समझा दूं वह अंतिम रूप से, आप ध्यान में रखना। एक आदमी नदी में तैरता है। तैर रहा है। वह कहता है, मुझे वहां पहुंचना है। नदी की तेज धारा है, हाथ-पैर मार रहा है, तैर रहा है, थका जा रहा है, टूटा जा रहा है लेकिन तैरता चला जा रहा है। यह आदमी प्रयास कर रहा है तैरने

का। तैरना एक प्रयास है। ध्यान करना भी एक प्रयास है। फिर एक दूसरा आदमी है, वह तैरता नहीं, बह रहा है। वह नदी में अपने को छोड़ देता है। हाथ-पैर भी नहीं तड़फड़ाता है, नदी में पड़ा हुआ है। नदी बह रही है, चली जा रही है। वह भी बहा चला जा रहा है। वह तैर ही नहीं रहा है, वह सिर्फ बह रहा है। बहना प्रयास नहीं है। सिर्फ बहना अप्रयास है, 'नो एफर्ट' है। मैं जिस ध्यान की बात कर रहा हूं वह फ्लोटिंग जैसा है, स्वीमिंग जैसा नहीं, तैरने जैसा नहीं, बहने जैसा। ध्यान रहे, एक आदमी तैरता है और एक पत्ता बह रहा है नदी में। देखें तैरते हुए आदमी को और एक बहते हुए पत्ते को। पत्ते की मौज ही और है। न कोई तकलीफ है, न कोई अड़चन है। न कोई झगड़ा, न कोई झंझट। पत्ता बड़ा होशियार है। पत्ते की होशियारी क्या है ? पत्ते की होशियारी यह है कि वह नाव पर सवार हो गया है, नदी को नाव बना लिया है। वह कहता है जहां नदी चले हम वहीं चलने को राजी हैं, लेकिन चले। उसने नदी की सब ताकत तोड़ दी, क्योंकि नदी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकती, वह नदी के खिलाफ ही नहीं लड़ता है। वह विरोध में खड़ा ही नहीं होता, वह कहता है, हम बहते हैं। तो पत्ता बिल्कुल राजी है। राजी क्यों है ? क्योंकि राजी होने की कोशिश ही नहीं कर रहा है, बस बहा चला जा रहा है। इसको ख्याल में लेना—एक पत्ते के बहने को। क्या आप भी नदी में ऐसे बह सकते हैं ? क्या आपने कभी देखा कि जिन्दा आदमी डूब सकता है, मुर्दा आदमी नदी के ऊपर आ जाता है। आपने कभी ख्याल किया है कि मामला क्या है ? जिन्दा आदमी डूब जाता है और मुर्दा कभी नहीं डूबता है। फौरन नदी के ऊपर आ जाता है। फर्क क्या है ? मुर्दा 'नो एफर्ट' में पहुंच जाता है। मुर्दा कहता है, अब हम कुछ नहीं करते। कर ही नहीं सकता। करना भी चाहिए तो क्या करेगा ? तो नदी के ऊपर आ जाता है, बहने लगता है। जिन्दा आदमी डूब सकता है क्योंकि जिन्दा आदमी कोशिश करता है। कोशिश में थक जाता है, थकने में डूब जाता है। नदी नहीं डुबाती है, लड़ना डुबाता है। वह मुर्दे को बिल्कुल नहीं डुबा सकती क्योंकि वह लड़ता ही नहीं। वह लड़ेगा ही नहीं तो उसकी ताकत नष्ट होने का सवाल ही नहीं। नदी कुछ बिगाड़ ही नहीं सकती। वह नदी में बहने लगता है। तो मैं जिस ध्यान की बात कर रहा हूं वह तैरने जैसी नहीं, बहने जैसी है, बह जाना है इसको। जब मैं कहता हूं कि शरीर शिथिल छोड़ दें तो उसका मतलब है कि शरीर से बहें हम। अब हम शरीर में कोई पकड़ नहीं रखते, शरीर के किनारों को नहीं पकड़ते। छोड़ दिया। बहने लगे। मैं कहता हूं कि श्वास को छोड़ दें। अब हम श्वास के किनारों को भी नहीं

पकड़ते हैं, उसको भी छोड़ देते हैं। उसमें भी बहने लगें। जायेंगे कहां ? जब शरीर को छोड़ेंगे तो भीतर जायेंगे और जब शरीर को पकड़ेंगे तो बाहर आयेंगे। जब कोई किनारे को पकड़ेगा तो नदी में कैसे जा सकता है, किनारे पर रुकता है। जब कोई किनारे को छोड़ेगा तो किनारे के बाहर तो आ ही नहीं सकता, नदी में ही आ जायेगा। तो जीवन की एक धारा बह रही है भीतर, परमात्मा की एक धारा, चेतना की एक धारा, वह जो स्ट्रीम आफ कांसेसनेस भीतर बह रही है। हम पकड़े हुए हैं शरीर के किनारे को। छोड़ दो इसे, श्वास को छोड़ दो। अब किनारा छूट गया। अब आप कहां जायेंगे ? अब धारा में बहने लगेंगे। और अगर कोई आदमी छोड़ दे धारा में अपने को, तो सागर में पहुंच जाता है।

इधर भीतर जो धाराएं बह रही हैं वह नदी की तरह हैं, और जब कोई उसमें बहने लगता है तो वह सागर में पहुंच जाता है। ध्यान एक बहना है और जो बहना सीख जाता है वह बह जायेगा। जो तैरेगा ज्यादा से ज्यादा, वह उस किनारे को पहुंच जायेगा और क्या करेगा ? तैरनेवाला कर क्या सकता है ? इस किनारे से उस किनारे पहुंच जायेगा। यह भी किनारा नदी के बाहर ले जाता है, वह किनारा भी नदी के बाहर ले जाता है। गरीब आदमी बहुत तैरेगा तो अमीर आदमी हो जायेगा। इतना ही हो सकता है और क्या होगा ! छोटी कुर्सीवाला बहुत तैरेगा तो दिल्ली की किसी कुर्सी पर बैठ जायेगा और क्या होगा ! लेकिन यह किनारा भी बाहर ले जाता है और वह किनारा भी बाहर ले जाता है। द्वारका का किनारा भी उतना ही बाहर और दिल्ली का किनारा भी उतना ही बाहर। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तैरनेवाला किनारे पर ही पहुंच सकता है। लेकिन बहने वाला ? बहने वाले को कोई किनारा नहीं रोक सकता क्योंकि उसने धार में अपने को छोड़ दिया है। धार उसे ले जायगी, ले जायेगी, सागर में पहुंचा देगी। सागर में पहुंच जाना ही लक्ष्य है। नदी सागर हो जाय और व्यक्ति की चेतना परमात्मा हो जाय, एक एक बूंद खो जाय, तो उसमें जीवन का परम अर्थ और जीवन का परमाणु और जीवन का परम सौंदर्य उपलब्ध हो जाता है। मरने की कला बहने की कला है, यह अंतिम बात है, क्योंकि जो मरने को राजी है, तैरता नहीं, वह कहता है ले जाओ जहां ले जाना है। हम तो राजी हैं।

मैंने सुना है एक सर्कस था। उसमें एक बन्दरों का मालिक था। रोज सुबह चार केले देता था बन्दरों को। सांझ तीन केले देता था। एक दफा बाजार में सुबह केले कम मिले। उसने कहा–– तीन केले आज बन्दरों सुबह ले लो, चार शाम को ले लो, तो बन्दरों ने हड़ताल कर दी। उन्होंने कहा–– यह कभी नहीं हो सकता। चार केले

सुबह चाहिए। उसने कहा—चार शाम को दे देंगे, अभी तीन ले लो। बन्दरों ने कहा, यह कभी हुआ ही नहीं। सुबह हमेशा चार केले मिलते रहे हैं। वही चार केले चाहिए। उसने कहा—तुम पागल हो गये हो क्या ? कुल मिलाकर सात केले हो जायेंगे। फिर बन्दरों ने कहा— इतना हिसाब हम नहीं जानते। हम तो चार केले अभी लेंगे, सुबह हमेशा चार केले मिलते थे। तो मुझे मित्र लिखते हैं बार बार कि आप तो बोलिये, आप प्रश्नों का जवाब मत दीजिये। मैं बोलूंगा। क्या बोलूंगा ? प्रश्न तो खूंटियां हैं। मुझे जो बोलना था वह तो टांग दिया। मैं बोलूंगा या प्रश्नों के उत्तर दूंगा इससे क्या फर्क पड़ता है ? कौन देगा उत्तर ? कौन बोलेगा ? लेकिन उन्हें यह लगता है कि नहीं, आप बोलिये क्योंकि हमको चार केले सुबह रोज मिलते रहे हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सात केले का हिसाब रखिये। इकट्ठा जोड़ कर लें। एक एक गिनती मत करें कि चार सुबह कि तीन शाम, कि तीन सुबह कि चार शाम। सात केले मैंने दे दिये हैं और गिनती की गड़बड़ में आप पड़ जायेंगे तो कहीं निराश न चले जाएं। इसलिए मैंने अंत में यह कह दिया कि सात केले मैंने दे दिये हैं। जो मुझे बोलना था वह मैंने बोल दिया है।

★

शुभ समाचार

श्रद्धालु एवं प्रेमी जनों के निवेदन पर **आचार्यश्री रजनीश** ने बम्बई में स्थायी आवास-केन्द्र रखना स्वीकार कर लिया है और आचार्यश्री १ जुलाई १९७० को बम्बई स्थित अपने नए निवास-स्थान में पधार जाएंगे, जिसका पता नीचे लिखे अनुसार है :

२७, सी. सी. आई. चैम्बर्स,
४ माला, दीनशा वाचा रोड,
बम्बई-२०

आचार्यश्री रजनीश के आगामी देश-व्यापी कार्यक्रम

दिनांक	स्थान	कार्यक्रम	संयोजक
१४ व १५ जुलाई	**अजमेर**		
२० जुलाई	**बम्बई**	सत्संग	श्री ईश्वरभाई, **बम्बई**
२८ जुलाई से ३१ जुलाई	**बड़ौदा**	प्रवचन	श्री चंद्रकांत पटेल, 'आसोपालव', बैंक आफ इंडिया के सामने, रायपुरा, **बड़ौदा**
८ अगस्त से ११ अगस्त	**अहमदाबाद**	प्रवचन	श्री जयंति भाई, जीवन जागृति केंद्र, डायचेम कार्पोरेशन, खाड़िया चार रास्ता, **अहमदाबाद–१ फोन : २४०८३**
१२ अगस्त	**बम्बई**	सत्संग	श्री ईश्वरभाई, **बम्बई**
१७ व १८ अगस्त	**बम्बई**	"	" "
१९ अगस्त	**दिल्ली**		
२० से २३ अगस्त	**लुधियाना**		

दिनांक	स्थान	कार्यक्रम	संयोजक
२४ अगस्त	**दिल्ली**		
२७ अगस्त	**बम्बई**	सत्संग	ईश्वरभाई, **बम्बई**
२८ अगस्त से ३१ अगस्त	**आजोल**	साधना शिविर	सुश्री धर्मिष्ठा बहन, संस्कार तीर्थ, **आजोल**, जि. महेसाणा (गुजरात)
१ सितंबर से ६ सितंबर	**बम्बई**	प्रवचन	श्री ईश्वरभाई, **बम्बई**
७ सितंबर	**बम्बई**	दशाब्दि महोत्सव	"
१० सितंबर से १२ सितंबर	**महुवा**	प्रवचन	श्री ब्रजलाल गिरधरलाल, नूतन नगर कुबेर बाग, **महुवा बंदर** (जि. भावनगर) **फोन** : १७९
२५ सितंबर से ६ अक्तूबर	**कुल्लू–मनाली**	**प्रवास-सत्संग**	विवरण : जीवन जागृति केंद्र, **बम्बई**

मुद्रक प्रकाशक : **श्री ईश्वरलाल एन. शाह,** जीवन जागृति केन्द्र, एम्पायर बिल्डिंग, रूम नं. ५३, डा. डी. एन. रोड, फोर्ट, बम्बई–१
मुद्रणस्थान : स्टेट्स पीपल प्रेस, बम्बई–१ ।

जीवन जागृति केन्द्र, बंबई द्वारा प्रकाशित आचार्यश्री रजनीश साहित्य

हिन्दी साहित्य

	मू. रुपया
प्रभु की पगडंडियां	४–००
क्रांतिबीज	३–००
नई दिशा नई बात	०–३०
अमृतकण	०–६०
अहिंसादर्शन	०–५०
सत्यकी पहली किरण	६–००
शांति की खोज	२–००
मैं कौन हूँ	२–००
कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१–००
नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०–७५
बिखरे फूल	०–३५
अज्ञात की ओर	२–००
नये संकेत	२–००
संभोग से समाधि की ओर	३–५०
क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार ?	०–३०
संस्कृति के निर्माण में सहयोग	०–३०
अंतर्यात्रा	३–५०
अस्वीकृति में उठा हाथ	५–००

मराठी साहित्य

साधनापथ	३–००
सिंहनाद	२–००
अहिंसादर्शन	०–५०
अमृतकण	०–५०
क्रांतिबीज	२–५०
प्रेमाचे पंख	०–७५

गुजराती साहित्य

	मू. रुपया
साधनापथ	२–००
स्पेशल प्रति	३–००
क्रांतिबीज (भाषा हिन्दी)	२–५०
सिंहनाद	१–२५
अमृतकण	०–५०
अहिंसादर्शन	०–५०
माटी ना दिवा	३–००
पंथ ना प्रदीप	३–००
हुं कोण छुं	२–००
केटलीक ज्योतिर्मय क्षण	०–७५
नवा मनुष्य ना जन्म नी दिशा	०–७५
सूर्य तरफनुं उड्डुचन	१–००
सत्य ना अज्ञात सागर नुं आमंत्रण	१–५०
अज्ञात प्रति	२–००
नवा संकेत	१–७५

अंग्रेजी साहित्य

पथ आफ सेल्फ रियेलायजेशन	२–२५
हू ऐम आई	३–००
फिलोसफी आफ नान–वायोलेन्स	०–८०
अर्दन लैंप्स	४–५०
सीडस् ऑफ रेव्होलुशनरी थॉटस्	४–५०
विंग्स् ऑफ लव्ह अॅन्ड रंडम थॉटस्	३–५०

पुस्तकें मिलने का पता :

जीवन जागृति केन्द्र,

एम्पायर बिल्डिंग, कमरा नं. ५३, १ ला मंजला, डॉ. डी. एन. रोड, फोर्ट बम्बई-१.

ज्योति शिखा

१७

जून १९७०

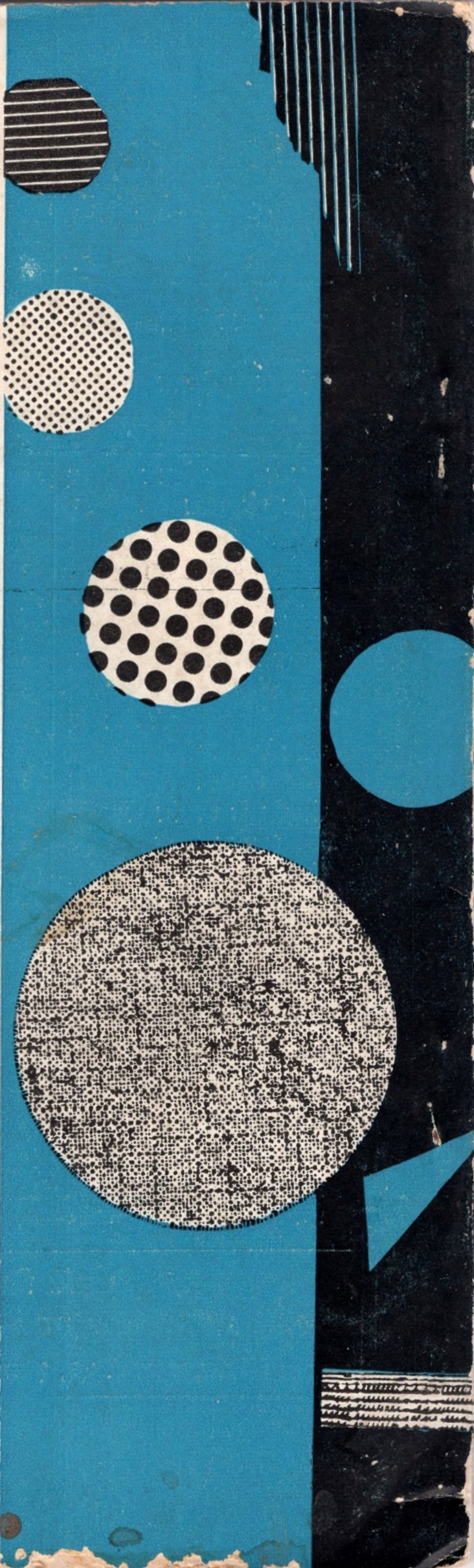

जीवन जागृति केन्द्र